प्रकरण नौ

वृन्दावन का एक निवासी

मैं वृन्दावन में अकेला बैठा लिख रहा था। मेरे गुरु भाई ने मुझसे आग्रह किया, "भक्तिवेदान्त प्रभु, आप यह अवश्य करें। संन्यास-आश्रम स्वीकार किये बिना कोई उपदेशक नहीं बन सकता।" इस प्रकार उन्होंने आग्रह किया। आग्रह उन्होंने नहीं किया, वस्तुतः मेरे आध्यात्मिक गुरु ने किया। वे चाहते थे कि मैं उपदेशक बनूँ, इसलिए उन्होंने इस गुरु भाई के माध्यम से जोर दिया : "तुम स्वीकार करो।" अतः अनिच्छापूर्वक मैंने स्वीकार किया।

—श्रील प्रभुपाद

इंजिन के पीछे-पीछे यात्रियों के डिब्बे लगभग चुपचाप आगे बढ़ते रहे। पटरियों पर छक-छक की धीमी लय में गाड़ी स्टेशन के बाहर हुई—माल गोदामों, झुग्गी-झोपड़ियों, पुरानी दिल्ली के किले, निजामुद्दीन में कूड़े के ढेरों, जिनके ऊपर सैकड़ों कौए और गिद्ध मंडरा रहे थे, और तब संगमरमर के गुम्बदों वाली लाल बलुआ पत्थर की एक मस्जिद को पार करती हुई वह आगे बढ़ती गई। अभय एक तीसरे दर्जे के डिब्बे में बैठे थे; उनका सामान सीट के नीचे रखा था। उन्होंने देखा कि मजदूर हाथ में धातु के बने टिफिन के लंच के डिब्बे लिए हुए रेल की पटरियों के पास से जा रहे थे। तब फूस और मिट्टी से बनी झोपड़ियों से घिरे कारखानों पर उनकी दृष्टि गई। छप्पर वाले घरों और तिरपाल के तम्बुओं में से ऊपलों से उठता धुआँ सवेरे की हवा में भर रहा था। इन्द्रप्रस्थ बिजली-घर की ऊँची चिमनियाँ एक दूसरे ही प्रकार का धुआँ उगल रही थीं, और इंजिन से निकलता धुआँ काले बादल की तरह पीछे की ओर उड़ता आ रहा था। रेल की लाइन की बगल में कांटेदार झड़-बेरी की झाड़ियों में लाल और बैगनी रंग के जंगली फूल खिल रहे थे; दूर पर मथुरा जाने वाली सड़क दिखाई दे रही थी, जिसकी दोनों ओर फलहीन

कीकर के पेड़ गोट-सरीखे खड़े थे।

आगरा जाने वाली यह सवेरे की गाड़ी थी और यात्री थोड़े थे। अभय को उससे मथुरा तक जाना था, उसके बाद ताँगा से उन्हें वृन्दावन पहुँचना था। भारतीय रेल से वे विस्तृत यात्रा कर चुके थे; विशेषकर १९२० ई., १९३० ई. और १९४० ई. के बीच, जब व्यवसाय के लिए उन्हें बंगाल, पंजाब, उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र और आंध्रप्रदेश में यात्राएँ करनी पड़ी थीं।

वे वृन्दावन कई बार आ चुके थे। रेलवे टाइमटेबल पलटते हुए बचपन के दिवास्वप्नों में वृन्दावन पहला स्थान था, जहाँ की यात्रा वे करना चाहते थे। १९२५ ई. की उनकी पहली वृन्दावन-यात्रा एक बहुत संक्षिप्त तीर्थयात्रा थी; उस समय वे व्यवसाय के सिलसिले में आगरा गये थे। उसके बाद १९३२ ई. में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती वृन्दावन की परिक्रमा पर गये। अभय के लिए वह एक स्मरणीय यात्रा थी; अभय ने कोसी में उनका प्रवचन सुना था और श्रील भक्तिसिद्धान्त ने लक्षित किया था कि, "वह सुनने में रुचि रखता है।" और तब तीन वर्ष बाद अपने आध्यात्मिक गुरु के साथ वे फिर राधा-कुंड गये थे। लेकिन इस तरह निवास करने के लिए पहले कभी नहीं गये थे। साधारण सफेद धोती पहने हुए, माला की थैली में जप की गुरियों पर अंगुलियाँ फेरते हुए और भगवान् के पवित्र नाम का चुपके से कीर्तन करते हुए अभय ने खिड़की से बाहर देखा।

रेलगाड़ी फरीदाबाद के घने झुरमुटों के पार हुई और खेतों के बीच पहुँची; कहीं गेहूँ, कहीं दाल, कहीं गन्ने के खेत रेलवे लाइन के किनारे से आधे मील तक फैले थे; खेतों के बाद जहाँ तक दृष्टि जाती, ऊसर सूखी भूमि का विस्तार था। गाड़ी की रफ्तार तेज हो रही थी। गाँव के बाद गाँव पीछे छूटते जा रहे थे। दिल्ली से एक घंटे की यात्रा के बाद जमीन समतल और खुली मिलने लगी; बीच-बीच में छोटे गाँव थे। कभी-कभी अभय को कोई विचित्र पुराना मन्दिर दिख जाता। लेकिन अधिकतर फैलाव तो समतल भूमि का ही था— कहीं ऊसर जिस पर कुछ ताड़ के पेड़ खड़े मिलते और कहीं जोते-बोए सिंचित खेत। ऊपर नीले आकाश और उसमें धधकते सूर्य का राज था।

बहुत समय से अभय की इच्छा वृन्दावन में रहने की थी और अब उनके मार्ग में कोई बाधा नहीं रह गई थी। उनका प्रयोजन वही बना रहा : *बैक टु गॉडहेड* के लिए लेख लिखना और हर पखवारे उन्हें दिल्ली में मुद्रक तक पहुँचाना। जब तक बस चले दिल्ली जाना और *बैक टु गॉडहेड* का वितरण करना। किन्तु रहना उन्हें वृन्दावन की शरण में ही था। उनके मन में केशी-घाट के निकट वंशी-गोपाल-जी मन्दिर के ऊपर का कमरा था, जहाँ से लगभग सारा वृन्दावन दिखाई देता था और १९५३ ई. में जब वे झांसी से वहाँ गये थे, तभी से उन्होंने मन्दिर के प्रबन्धक से सम्पर्क बनाए रखा था।

वृन्दावन जाने में अभय अपने पूर्वगामी आध्यात्मिक गुरुओं का अनुसरण कर रहे थे। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती और भक्तिविनोद ठाकुर के निवास स्थान राधाकुंड में थे और वे वृन्दावन में प्रवचन कर चुके थे। गौरकिशोर दास बाबाजी, जगन्नाथ दास बाबाजी, विश्वनाथ चक्रवर्ती और नरोत्तम दास ठाकुर या तो वृन्दावन में रह चुके थे या भगवान् चैतन्य की जन्मभूमि के निकट नवद्वीप में।

भगवान् चैतन्य और उनके बाद के अनुयायियों का वृन्दावन से विशेष घनिष्ठ सम्बन्ध था। भगवान् चैतन्य ने रूप गोस्वामी और सनातन गोस्वामी को वृन्दावन में कृष्ण के लीला-स्थलों की खोज निकालने के लिए भेजा था, जो शताब्दियों के दौरान विस्मृत हो गये थे। रूप और सनातन अपने प्रतिष्ठित सरकारी पदों का त्याग करके वृन्दावन में रहने गये थे। साधारण लँगोटी पहनकर वे बिना किसी निश्चित निवास के, हर रात भिन्न-भिन्न पेड़ों के नीचे बिताते हुए वृन्दावन में रह चुके थे। वृन्दावन में छह गोस्वामियों के नाम से विख्यात व पूजित इन दोनों ने और जीव गोस्वामी, रघुनाथ दास गोस्वामी, रघुनाथ भट्ट गोस्वामी और गोपाल भट्ट गोस्वामी ने मिलकर कृष्ण-भक्ति पर विशाल साहित्य तैयार किया था। उन्होंने धनाढ्य वैष्णवों को वृन्दावन के गोविन्दजी, मदन-मोहन, राधा-दामोदर, राधा-रमण जैसे बृहत् मन्दिरों के निर्माण के लिए प्रेरित किया था। भगवान् चैतन्य के संसार त्यागने के कुछ समय बाद ही रघुनाथ दास गोस्वामी ने राधा-कुंड पर कृष्ण के एक लाख नामों का उच्चारण किया था और भगवान् चैतन्य की लीलाओं पर वे प्रतिदिन कई घंटे प्रवचन करते रहे थे। वहीं पर कृष्णदास कविराज ने भी *चैतन्य-चरितामृत* का संकलन किया था, जिसमें भगवान् चैतन्य का जीवनचरित और उनके उपदेशों का वर्णन है।

उन गौड़ीय वैष्णवों ने भी, जो वृन्दावन में नहीं रहते थे, वृन्दावन को सदा अपने हृदय में धारण किया और उसकी महिमा का उद्घोष किया। *चैतन्य-चरितामृत* में वर्णन है कि पुरी से वृन्दावन तक यात्रा करते हुए भगवान् चैतन्य कितने भावविह्वल हो गये थे : "जगन्नाथ पुरी में श्री चैतन्य महाप्रभु का हृदय उल्लसित प्रेम में डूबा था, किन्तु जब वे वृन्दावन के मार्ग पर आगे बढ़े, तो वह प्रेम सौ गुना अधिक हो गया। जब वे मथुरा पहुँचे, तो भगवान् का उल्लसित प्रेम हजार गुना अधिक हो गया; लेकिन जब वे वृन्दावन के वनों में भ्रमण करने लगे, तो वह लाखों गुना अधिक हो गया। जब वे कहीं अन्यत्र होते, तो वृंदावन के नाममात्र से उनके हृदय में प्रेम उमड़ पड़ता। अब जब वे वृन्दावन के वन में सचमुच भ्रमण करने लगे, तो दिन-रात उनका हृदय उल्लसित प्रेम में डूबा रहने लगा था। उनका खाना-पीना, नहाना-धोना केवल आदत के तौर पर होता था।"

वृन्दावन भगवान् कृष्ण के शाश्वत अध्यात्म-लोक का लौकिक रूप है, जिसका वर्णन

स्वयं भगवान् ने *भगवद्गीता* में किया है : "एक अन्य प्रकृति है, जो शाश्वत है और प्रकट-अप्रकट पदार्थ से परे है। उसका नाश कभी नहीं होता। वह परम लक्ष्य है। जब कोई वहाँ पहुँच जाता है, तो वह कभी वापस नहीं आता। वह मेरा परम धाम है।" कृष्ण की सच्चिदानन्द लीलाओं का और उनके धाम, गोलोक वृन्दावन का वर्णन बहुत से वैदिक ग्रंथो में किया हुआ है। "मैं आदिदेव, आदि सृष्टिकर्ता, गोविन्द की आराधना करता हूँ, जो आध्यात्मिक रत्नों से निर्मित धामों में रहते हैं, जहाँ वे लाखों कल्पवृक्षों से आच्छादित और सहस्रों लक्ष्मियों या गोपियों से बड़ी श्रद्धा और प्रेम से सेवित कामनाओं की पूर्ति करने वाली गौओं को चराते हैं।"

यद्यपि भगवान् कृष्ण का धाम गोलोक वृन्दावन भौतिक जगत से अत्यन्त परे है, किन्तु वे जब पृथ्वी पर अवतरित होते हैं, तब वे अपने शाश्वत धाम का प्रदर्शन भारत के वृन्दावन में करते हैं। उत्तर भारत के उस चौरासी वर्ग मील क्षेत्र का तादात्म्य आध्यात्मिक आकाश के शाश्वत लोक से है।

वृन्दावन में वास करने और मरने से भक्त का शाश्वत अध्यात्म-लोक में पहुँच जाना निश्चित हो जाता है। वृन्दावन के निवासी, यहाँ तक कि वहाँ के पशु भी महान् हैं; जीवन के अन्त में उनका स्थानान्तरण गोलोक वृन्दावन हो जायेगा। इसलिए ब्रह्माजी ने भी प्रार्थना की कि वे वृन्दावन के सीमान्त पर दूर्वा-दल के रूप में जन्म पाएं, जिससे इन पवित्र भक्तों की चरण-रज उन्हें पवित्र बना दे। और वैष्णव शास्त्रों में ऐसा उल्लेख है कि वृन्दावन की अल्पकालिक यात्रा से भी कोई अपने हृदय में परम भगवान् की अनुभूति कर सकता है।

श्रीचैतन्य-चरितामृत का कथन है, "भगवान् कृष्ण के दिव्य शरीर की भाँति गोकुल सर्वव्यापक, अनन्त और सर्वोपरि है। नीचे, ऊपर, सर्वत्र उसका अबाध विस्तार है। भौतिक जगत में उस दिव्य लोक का दर्शन भगवान् कृष्ण की इच्छा से होता है। वह मूल गोकुल से अभिन्न है; वे दो अलग-अलग लोक नहीं है। वहाँ की भूमि चिन्तामणि है और वहाँ के वनों में कल्पवृक्षों का बाहुल्य है, यद्यपि भौतिक-चक्षुओं को वह सामान्य स्थान लगता है। कृष्णभावनामृत की साधना के लिए आदर्श स्थान व्रजभूमि या वृन्दावन है, जहाँ के लोग स्वाभाविक रूप से कृष्ण से प्रेम करते हैं और कृष्ण स्वभावतः उनसे प्रेम करते हैं।"

• • •

गाड़ी मथुरा पहुँची। अभय अपने सामान के साथ नीचे उतरे और चारों ओर देखते हुए उनकी निगाह हाल में बने मथुरा जंक्शन की इमारत पर गई। द्वार से होकर स्टेशन से बाहर निकलने पर उन्हें एक ताँगावाला मिला। उससे किराया तय करके वे केशी-घाट के लिए चले।

डगमग करती घोड़ा-गाड़ी आधे मील तक रेलवे लाइन और रेलवे यार्ड के बीच की सड़क पर चलती रही। मुख्य सड़क आने पर वे लोग बाईं ओर मुड़ गये; लाइन के नीचे एक पुल से गुजरते हुए वे एक खुले बाजार में पहुँचे। फलों, सब्जियों और अनाजों के ढेर के ढेर जमीन पर रखे थे; उनकी बगल में बैठे व्यापारी वस्तुओं के विनिमय और तौल में लगे थे, जबकि खरीददारों की भीड़ इधर-उधर आ-जा रही थी। पीले, हरे, गुलाबी, बैगनी रंग की चटकीली साड़ियाँ पहने हुए मथुरा की स्त्रियाँ खरीददारी करती बाजार में घूम-फिर रही थीं। आने जाने वाले वाहनों में अधिकतर बैलगाड़ियाँ थीं। बैलों के कंधों के बीच प्रायः जुए पर बैठे गाड़ीवान लकड़ी के दस्त से बन्धी रस्सी के कोड़े से कभी एक बैल को हाँकते तो कभी दूसरे को। वृन्दावन के मार्ग में यद्यपि यह सबसे घना-बसा क्षेत्र था, तो भी दिल्ली की तुलना में यह साधारण और ग्रामीण लगता था।

सूर्य सिर पर था, लेकिन ताँगा के ऊपर की छतरी से कुछ छाया मिल रही थी; ग्रीष्म का ताप समाप्त हो चुका था। बाजार के बाद सड़क दाहिनी ओर मुड़ी और भगवान् कृष्ण के जन्मस्थान के निकट खड़ी सफेद गुम्बदों वाली रेतीले पत्थर की बनी भारी-भरकम मस्जिद दिखाई पड़ी। शताब्दियों पहले आक्रमणकारी मुसलमानों ने भव्य कृष्ण-मन्दिर को नष्ट कर दिया था और उसके स्थान पर मस्जिद बना दी थी, और अब मस्जिद के ठीक सामने एक नया और पहले से छोटे आकार का कृष्ण-मन्दिर खड़ा था।

वे तिराहे पर पहुँचे, जहाँ से नई दिल्ली, मथुरा नगर और वृन्दावन की सड़कें फटती थीं। ताँगेवाले ने घोड़े को कोड़ा लगाया और ताँगा वृन्दावन की सड़क पर शुभ्र गायों के झुण्ड बीच से होता हुआ आगे बढ़ा। चरवाहा भी अपनी लाठी लिए उनके बीच चल रहा था। सड़क ताँगों और धीमी गति से चलने वाली चरमराती बैलगाड़ियों से भरी थी। बैलगाड़ियों पर बाजार में बिकने वाले सामान लदे थे और उन्हें ठिगने काले भैंसे खींच रहे थे। अपने से भी बड़े कलही और बालू के बोरे पीठ पर लादे लम्बी-पतली टांगों वाले छोटे कद के गधों की पंक्ति अलग चल रही थी।

परिक्रमा के दिनों जब अभय अपने आध्यात्मिक गुरु के दर्शन के लिए यहाँ आये थे, यद्यपि तब से उनके जीवन में काफी परिवर्तन हो चुका था, फिर भी वृन्दावन वही का वही था। उन्हें लगा कि दिल्ली की भीड़, गरमी, धुआं और लोगों के लड़ाई-झगड़े पीछे छोड़ यहाँ आकर उन्होंने बहुत अच्छा किया। यह उनके लिए सहज राहत थी। फिर भी यद्यपि वृन्दावन के लिए उनके मन में दिव्य भाव थे, उन्होंने जो दिल्ली में प्रचारक के रूप में महीनों कार्य किया था, उसकी यादें उनके मन में बनी थीं—शहर की सड़कों में *बैक टु गॉडहेड* लेकर स्थान-स्थान पर घूमने की यादें। दिल्ली की जिन्दगी अविरत जोरदार प्रचार की जिन्दगी थी। अब उनकी अवस्था साठ वर्ष से अधिक हो रही थी, लेकिन वे वृन्दावन

अवकाश ग्रहण करने नहीं आये थे। घर-गृहस्थी की जिम्मेदारियों से उन्होंने अवकाश-ग्रहण कर लिया था, लेकिन *बैक टु गॉडहेड* को *इलस्ट्रेटेड वीकली* की तरह जनप्रिय और बढ़िया बनाने की जिम्मेदारियों से नहीं। उन्हें वृन्दावन में निवास करना था और दिल्ली जाते-आते रहना था। लेकिन प्रचार का कार्य उन्हें कभी बन्द नहीं करना था।

जैसे जैसे दुबला-पतला घोड़ा आगे बढ़ता रहा और पुलिस थाना और जानवरों के लिए बने पानी के हौज जब पीछे छूट गये, वैसे ही ऊँचे वृक्षों से वृन्दावन के परिसर का बोध हुआ। सड़क की दोनों ओर बगीचों के अहाते और निजी संपत्ति और आश्रम दिखाई देने लगे। चमचमाती धूप में कोमल श्वेत मालती, सुनहरे गेंदा, लाल चमेली और कई प्रकार के पेड़ व फूल, जो केवल वृन्दावन में मिलते हैं, तेज धूप में खिले हुए थे। बाईं ओर राधा-गोविन्द का कोट-सरीखा मन्दिर धुँधला सा दिखाई दे रहा था और ठीक उसके सामने, दूरी पर, रंगनाथ के मन्दिर का ऊँचा शिखर दिखाई दे रहा था। ताँगा तंग सड़कों में से होकर चला, जिनकी दोनों ओर बाजारों की भीड़ थी और शहरी मकान थे। आगे बढ़ने पर शान्ति मिली। तब एक तंग गली के सिरे पर यमुनाजी के किनारे, केशी स्नान घाट के निकट वंशी गोपालजी के मन्दिर का छोटा-सा, सुन्दर अलंकृत द्वार दिखाई दिया। मन्दिर का भवन सँकरा, तिमंजिला था, जिसमें तीन गुम्बद और कई अलंकृत मेहराब थे।

मोड़ के किनारे की नाली पार करने के बाद अभय संगमरमर की तीन सीढ़ियाँ ऊपर चढ़े और मुख्य द्वार से अन्दर प्रविष्ट हुए। ताँगेवाला उनका सामान लिए हुए पीछे चल रहा था। द्वार पार करने पर उन्होंने अपने जूते उतार दिए और लोहे की झँझरी से आच्छादित खुले आँगन में प्रवेश किया, जिसके दुमंजिले पर कुछ पक्षी बैठे थे। आँगन का एक हिस्सा सूर्य की किरणों से आलोकित था। वहाँ स्तंभ पर गमले में तुलसी का पौधा विराज रहा था। मन्दिर शीतल और शान्त प्रतीत हुआ। प्रांगण से लगा हुआ श्रीविग्रह कक्ष था, जिसके द्वार बन्द थे और उनमें ताले लगे थे। ऊपर कमरों वाला एक तहखाना था, जिसका द्वार आंगन से दिखाई दे रहा था। कपड़े टांगने के लिए बंधी रस्सी पर फैलाई हुई कुछ साड़ियाँ और कपड़े लटक रहे थे।

मन्दिर के पुजारी महन्त गोपाल ने, जिन्हें अभय सन् १९५४ ई. से जानते थे, हर्षपूर्वक उनका स्वागत किया। उनकी आयु लगभग वही थी जो अभय की। उनके बाल लम्बे और सफेद थे और दाढ़ी बिखरी हुई थी। यद्यपि अभय का पहनावा मामूली था, लेकिन गोपाल की तुलना में, जो केवल एक मोटी धोती पहने थे, वे अच्छी वेश-भूषा में लगते थे।

गोपाल अभय को ऊपर ले गये। बाहर छत पर निकलकर जब अभय ने चारों ओर का अद्भुत दृश्य पुनः देखा, तो वे मुस्कराने लगे। मुश्किल से सौ ही गज की दूरी पर यमुना थीं; वह उनके ठीक सामने प्रवहमान जल की केवल पतली धारा ही नहीं थी, वरन्

उनकी दाईं और बाईं ओर बल खाकर बहती हुई विस्तृत जल-राशि थी, जो तीसरे पहर के सूर्य के प्रकाश में चमचमा रही थी। जहाँ तक दृष्टि जाती थी, वहीं बालू के डेल्टा दिखाई देते थे, कहीं चरती हुई गाय-भैंसों के झुंड, कहीं घास से आच्छादित यमुना के तट, कहीं मैदान, कहीं पेड़। और विपरीत दिशा में वृन्दावन का कस्बा था, जिसमें दर्जनों मन्दिरों के शिखर और गुम्बद दिखाई पड़ रहे थे।

छत पर अभय का छोटा-सा कमरा अकेला था। उसमें दुहरे तंग दरवाजे थे और खिड़कियों में छड़ लगे थे। कमरे की छत पर वानर अपने नन्हे बच्चों को लिए निश्चिंतता से देखते हुए बैठे थे। दरवाजे के ठीक बाहर एक दो-फुट का सीमेंट का शंकु इस बात की सूचना देता खड़ा था कि मन्दिर का श्रीविग्रह ठीक नीचे विराजमान है। अभय कमरे में गये। छड़दार खिड़कियों से वे केशीघाट का महल, गोपीनाथ मन्दिर का आराध्य शिखर और उसके आगे चौड़ी यमुना का अबाध प्रवाह, हरे-भरे किनारे और आकाश सभी कुछ देख सकते थे।

कमरे की सभी वस्तुओं—मिट्टी के तेल का छोटा-सा दीपक, स्नानार्थ कुएं से जल निकालने की बाल्टी और रस्सी आदि से अभय को अवगत कराने के बाद गोपाल ने सावधानी से सरकारी टिकट-लगा किराए का एक अनुबंध पत्र निकाला। अभय ने अपने को दिवंगत श्री श्रीमद् भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपाद का शिष्य घोषित करते हुए, उस पर एक संक्षिप्त अनुच्छेद लिखा, इस बात के प्रमाणस्वरूप कि वे पाँच रुपए प्रतिमास पर उस कमरे के किराएदार हैं। दोनों दलों ने हस्ताक्षर किये।

• • •

स्नान के बाद अभय ने प्रसाद लिया और विश्राम किया। जब नीचे मन्दिर में उन्हें घंटियाँ सुनाई दीं, तो वे श्रीविग्रह का दर्शन करने के लिए नीचे उतरे। गोपाल ने, जो बहुत वर्षों से मन्दिर के पुजारी थे और १९२३ ई. में उसे पुनर्निर्मित होते हुए देख चुके थे, अभय को बताया था कि मन्दिर के विग्रह, वंशीगोपालजी की स्थापना ३५० वर्ष पूर्व निम्बार्क वैष्णव सम्प्रदाय के महन्त प्रह्लाद दास द्वारा की गई थी। स्वयं गोपाल ने राधारानी और वंशीगोपालजी के श्रीविग्रहों को स्थापित किया था। त्रिभृंगी मुद्रा में खड़े और हाथ में वंशी लिए हुए सुन्दर वंशीगोपाल का श्रीविग्रह बड़ा मोहक था। वह तीन फुट ऊँचा था और काले संगमरमर का बना था। राधारानी का श्रीविग्रह कुछ छोटा था और पीतल का बना था। श्रीविग्रह सफेद रंग के साधारण श्वेत वस्त्रों से आभूषित और मिट्टी के तेल के धीमे प्रकाश से आलोकित थे। अभय ने देखा कि श्रीविग्रहों की सेवा तो की जा रही थी, लेकिन निर्धनता के कारण वहाँ ठाठ-बाट नहीं था।

संध्या में वृन्दावन कस्बे पर सूर्यास्त होने के समय अभय छत पर वापस गये। पूरी छत अकेले उनके टहलने के लिए थी। अभय टहलते रहे और जप करते रहे—यमुना से आती सान्ध्यकालीन ठंडी हवा का आनन्द लेते हुए। कभी कभी कोई एकाकी नाव यमुना के शान्त जल में जाती दिखाई देती और किसी अदृश्य भक्त के प्रार्थना-गीतों की स्वर-लहरी केशी घाट पर उठती सुनाई देती। भगवान् कृष्ण की लीला स्थली के मध्य स्थित वह स्थान अभय को आनन्ददायक लगा। वे वहाँ के लिए ऐसे कोई नये नहीं थे, जो एक अनजान कस्बे में पहला दिन बिता रहे हों। वहाँ की हर वस्तु उनके लिए परिचित और प्रिय थी। चूँकि वृन्दावन कृष्ण का धाम था और अभय उनके सेवक थे, छह गोस्वामियों के सेवक, अपने आध्यात्मिक गुरु के सेवक, इसलिए उन्हें सबकुछ घर जैसा लगा।

दिन की समाप्ति पर धुँधलका होते ही नगर-भर के मन्दिरों में घंटे बजने लगे। अभय छत के पच्छिमी किनारे पर गये और वहाँ से हजारों मन्दिरों का वह नगर देखने लगे। गोविन्दजी मन्दिर, रघुनाथ मन्दिर और हजारों छोटे मन्दिरों में भगवान् कृष्ण की महिमा का बखान करते हुए संध्या-आरती और भजन-कीर्तन की धूम मची थी।

वृन्दावन के उन दृश्यों और स्वर-लहरियों की अभय के हृदय में वैसी ही अनुक्रिया हुई, जैसी एक सच्चे भक्त में होनी चाहिए। उनके मन के भाव और विचार, कृष्ण, कृष्ण के भक्तों और कृष्ण के धाम की चेतना और सराहना से ओत-प्रोत थे। स्वभावत: वे सबको उपदेश देकर यह बताने की सोचने लगे कि सभी लोग वृन्दावन में मिलने वाली आन्तरिक शान्ति और उल्लास के बारे में जानें। परब्रह्म कृष्ण सभी आत्माओं को आमंत्रित कर रहे थे कि वे उनके शाश्वत धाम में उनसे जा मिलें। लेकिन भारत में भी इसे बहुत कम लोग समझ रहे थे। और भारत के बाहर तो लोग बिल्कुल नहीं जानते थे कि वृन्दावन क्या है या यमुना क्या है या सांसारिक इच्छाओं से मुक्ति पाने का अभिप्राय क्या है। लेकिन संसार के सभी लोगों को ऐसा ज्ञान क्यों नहीं मिलना चाहिए? वृन्दावन शान्ति का धाम था, लेकिन यह कोई नहीं जानता था, न ही किसी में जानने की रुचि थी। परन्तु सचमुच इसे ही जानने की लालसा सभी में थी।

अभय को *बैक टु गॉडहेड* का ध्यान आया और इस बात का कि कृष्ण की कृपा से वे भारत के बाहर भी सारे संसार में अपने प्रचार-कार्य का विस्तार कैसे कर सकते हैं। उनके गुरुभाई... अच्छा होता कि वे मिल-जुलकर गौड़ीय मठ में कार्य करते रहते, लेकिन उनमें से बहुत-से, कम से कम, विधि-विधानों का पालन तो कर रहे थे। लेकिन उनमें से कोई भी कुछ विशेष नहीं कर पा रहा था; सिवा इसके कि कुछ लोग किसी मन्दिर की और कुछ किसी आश्रम की देखभाल कर रहे थे या श्रीविग्रह की आराधना करते हुए खाने-पीने और सोने में समय बिता रहे थे। परन्तु इसके अतिरिक्त भी वृन्दावन की महिमा

का प्रसारण करने के लिए बहुत कुछ करना बाकी था। अभय भजन करने लगे और कृष्ण के विचारों में डूब गये। धीरे धीरे उनका ध्यान *बैक टु गॉडहेड* का अक्तूबर अंक निकालने की ओर गया। उसकी छपाई दिल्ली में जल्दी ही होनी थी; निश्चित समय के अन्दर कार्य पूरा होना था।

दूसरे दिन सूर्योदय के पहले ही वृन्दावन के निवासी जाग गये। वे यमुना में नहाने, अपने अपने आराध्य श्रीविग्रहों की पूजा करने और मंत्रोच्चार में लग गये। लेकिन अभय उनसे भी पहले जागकर छत के ऊपर के अपने कमरे में रोशनी के नीचे शान्तिपूर्वक लिखने में लग गये थे। वे परिश्रमपूर्वक अंग्रेजी में लिखते जाते थे और शास्त्रीय सन्दर्भ अपने आप प्रकट होकर उनके विश्वासोत्पादक तर्कों में स्थान लेते जाते थे। वे घंटों लिखते रहे, एक अभ्यास पुस्तिका के पन्ने पर पन्ने भरते रहे, जब तक कि धीरे धीरे जगाने वाले पक्षियों का कलरव न सुनाई पड़ने लगा, जिससे अंधकारपूर्ण रात्रि की खामोशी के अन्त की सूचना मिली। शीघ्र ही सूर्योदय होने वाला था।

नित्य की दिनचर्या के अनुसार अभय ने लिखना बन्द कर दिया। वे अपने कमरे में ही बैठकर मंद, गम्भीर स्वर में हरे कृष्ण मंत्र जपने लगे। सूर्य की प्रथम रश्मियों के फूटने और नदी के जल के दृश्यमान होने के पूर्व ही कुछ बाबा लोग सड़कों में प्रार्थना-गीत गाते हुए यमुनाजी की ओर जाने लगे। चार बजते-बजते सारे नगर के मन्दिरों में घंटे-घड़ियाल भगवान् की मंगल-आरती का सन्देश देते हुए बजने लगे। अभय एक और घंटे तक अकेले जप में लगे रहे। तब वे नहाने की तैयारी करने लगे। लम्बी रस्सी में बंधी बाहरी को छत पर पानी खींचने के लिए उन्होंने उसे नीचे कुएँ में धकेला।

जब वे बाहर निकले, तब प्रकाश फैल गया था। उनके गले से माला वाली थैली लटक रही थी। *बैक टु गॉडहेड* की कुछ प्रतियाँ उनके हाथ में थीं। मन्दिर के द्वार पर पहुँचकर वे दाहिनी ओर मुड़े और नगर की टेढ़ी-मेढ़ी एक दूसरे को काटती तंग गलियों और गंदे रास्तों से होते आगे बढ़े। उस क्षेत्र में दुकानें नहीं थीं, केवल खामोश आवास थे, जिनमें कुछ सैकड़ों साल पुराने थे। पड़ोस में शान्ति थी। बन्द दरवाजों के पीछे कोई खट-खटी बजाकर मधुर स्वर में हरे कृष्ण मंत्र गा रहा था। एक चौराहे पर, जहाँ श्याम वर्ण की स्त्रियाँ कुएँ से पीतल के बर्तनों में पानी निकाल रही थीं, अभय अपनी बाईं ओर की छोटी खुली ड्योढ़ियों वाली एक गली में मुड़े। दोनों ओर उन्होंने अलंकरण-युक्त मन्दिर देखे : एक के द्वार पर दो पाषाण-सिंह खड़े थे, दूसरे के द्वार पर सिंह सरीखे दाँतों वाला तराशा हुआ एक हाथी। ईंट और चूने से बनी एक दीवार पुरानी होने से गिर रही थी।

शीघ्र ही अभय राधारमण-मन्दिर पहुँच गये, जिसकी स्थापना भगवान् चैतन्य के एक प्रमुख अनुयायी गोपाल भट्ट गोस्वामी द्वारा लगभग पाँच सौ वर्ष पूर्व की गई थी। वृन्दावन

के निवासी इस मन्दिर में दर्शन के लिए अपने संकल्प अनुसार नित्य जाते-आते रहते थे। वे कड़े नियम का पालन करते थे, जिससे विभिन्न मन्दिरों के दर्शन के समय में एक मिनट का भी विलम्ब नहीं होता था। अभय मन्दिर में प्रविष्ट हुए और उपासकों के समूह के मध्य खड़े होकर वे राधारमण कृष्ण के श्रीविग्रह का अवलोकन करने लगे। श्रीविग्रह ताजे फूलों की माला पहने थे; चमकते हुए रत्नों और रेशम के परिधान में सजे भगवान् कृष्ण के मुग्धकारी श्याम रंग के श्रीविग्रह बहुत वैभवशाली लग रहे थे।

अभय जानते थे कि राधारमण मन्दिर के पुजारी संस्कृत के सम्मानित विद्वान थे और उनमें से कुछ अँग्रेजी भी जानते थे; इसलिए अभय अपने साथ *बैक टु गॉडहेड* की कुछ प्रतियाँ ले गये थे। वे युवा पुजारी विश्वम्भर गोस्वामी से मिले, जिनकी आयु लगभग ३० वर्ष की थी और जो अपने पिताजी की मृत्यु के बाद वकालत का पेशा छोड़कर मन्दिर के प्रबन्ध का कुछ कार्य देखने में लग गये थे। मन्दिर की व्यवस्था 'जाति गोस्वामी' प्रथा के अधीन थी और इस तरह विगत पाँच सौ वर्षों से उसकी देख-रेख विश्वम्भर के पूर्वजों द्वारा होती आ रही थी। विश्वम्भर बहुत से साधुओं से मिल चुके थे, लेकिन अभय के शिष्ट और विनम्र व्यवहार से वे तत्क्षण प्रभावित हुए। उन्होंने *बैक टु गॉडहेड* की प्रतियाँ स्वीकार कीं और वे अभय के साथ बैठकर उनसे वार्तालाप करने लगे।

उसके बाद अभय वृन्दावन की घुमावदार गलियों को पार करते हुए राधा-दामोदर मन्दिर पहुँचे। मार्ग में उन्हें वृद्ध बाबा लोग मिले और जल ले जाती हुई स्त्रियाँ मिलीं और एक खुली ड्योढ़ी के निकट एक दुकान मिली, जहाँ लोग एक शिवलिंग की आराधना कर रहे थे। एक पक्की दीवार के ऊपर बैठे वानर इस छत से उस छत पर, इस शिला-फलक से उस शिला-फलक पर कूद रहे थे और गली में नीचे जाते हुए अभय की ओर देखकर चहकते हुए कटकटाते हुए भाव-भंगिमा बना रहे थे। सवेरा होने के साथ खुले फाटक के अन्दर खेलते हुए नंगे पैर वाले बच्चे अधिकाधिक संख्या में दिखाई देने लगे। अभय माला की थैली में दाहिना हाथ डाले हुए और जप करते हुए चले जा रहे थे; उनके होंठ मंद गति से हिल रहे थे। वृन्दावन में शायद ही कोई जानता हो कि वे कौन है। लेकिन एक वयोवृद्ध, सुसंस्कृत बंगाली सज्जन के रूप में वे कोई असामान्य दृश्य नहीं प्रस्तुत कर रहे थे; वे एक धर्मनिष्ठ बाबू थे—ऐसे नगर में जो पूर्ण रूपेण धर्म को समर्पित था।

• • •

अभय नियमित रूप से वृन्दावन के प्रसिद्ध मन्दिरों में जाते और बाद में दुकानों से चीजें खरीदते। वे अपने स्थान पर खाना पकाने के लिए साग-भाजी लिए हुए ग्यारह बजे के आसपास लौटते। मिट्टी के तेल से चलने वाले स्टोव पर तीन खाने वाले कुकर में वे

भात, आलू, और कभी कभी सब्जी पकाते। वे चपाती भी बनाते। दिन-भर में वे केवल एक बार, दोपहर में, भोजन करते और शाम को एक प्याला दूध ले लेते। जब उन्हें भोजन बनाने का समय न मिलता, तो वे भगवान् का प्रसाद ग्रहण करके रह जाते। दोपहर के खाने के बाद वे पंद्रह मिनट के लिए झपकी लेते और फिर लिखने में लग जाते। उनसे मिलने के लिए शायद ही कोई आता; वे अकेले रहकर लिखते रहते।

सूर्यास्त के ठीक पहले वे पुनः मन्दिरों में जाते। केशीघाट पर उन्हें यहाँ-वहाँ अकेले बैठे और यमुना की ओर मुख किये साधु दिखाई देते। स्वयं यमुना में कोई अधिक भीड़ न दिखाई देती, एक-दो नावें कभी कभी उसके शान्त जल पर धीरे धीरे तैरती होतीं। कभी कभी कोई मछली जल के ऊपर छलांग लगा जाती या कोई पक्षी नीचे आँख गड़ाए जल के ऊपर से निकल जाता। केशीघाट शान्त और सुन्दर लगता, विशेषकर सूर्य के शिथिल पड़ जाने के बाद। अभय को देखकर साधु लोग वृन्दावन की प्रथानुसार 'जय राधे' कहकर उनका स्वागत करते और 'हरे कृष्ण' कहकर अभय उसका उत्तर देते।

संध्या-समय जब अभय नगर में से होकर वापस लौटते, तो अपने को एक के बाद दूसरे कीर्तन की स्वर-लहरियों से आनन्दित पाते। राम, कृष्ण, चैतन्य, नृसिंह, शिव के मन्दिरों, आश्रमों, घरों, यहाँ तक कि सड़कों में चलते जन-समूहों से भी कीर्तन के बोल उठते रहते : हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण-कृष्ण, हरे हरे/ हरे राम, हरे राम, राम-राम, हरे हरे। वे प्रायः देखते कि बंगाली विधवाएँ किसी बड़े कमरे में एक साथ रह रही हैं। ऐसी हजारों विधवाएँ वृन्दावन में आश्रमों में रह रही थीं। उनकी जरूरतें बहुत थोड़ी थीं। वे मोटी सफेद साड़ियाँ पहनती थीं, बाल कटाकर छोटे रखती थीं और मथुरा जाने के लिए भी वृन्दावन छोड़ने को तैयार नहीं थीं। वे केवल वृन्दावन में रहना चाहती थीं और हरे कृष्ण रटती हुई वृन्दावन में मरना चाहती थीं। एक आदमी मृदंग बजाता और कीर्तन का नेतृत्व करता बैठा होता और विधवाओं का समुदाय आगे-पीछे तालियाँ बजाता हुआ बाल-सुलभ वाणी में उनका अनुगमन करता। मृदंग, तालियों और गायकों से—जो कोई पटु गायक नहीं थे, लेकिन सच्चे भक्त थे—मिलकर संध्या के समय बड़ी ही मधुर ध्वनि निकलती थी। अभय जब चलते होते, तो एक कीर्तन की आवाज पीछे छूटते ही आगे दूसरे कीर्तन की आवाज जोर से सुनाई देने लगती और उसके मंद पड़ते ही अगले कीर्तन की आवाज आने लगती। किसी मन्दिर में अनवरत गति से कोई घंटा बजता रहता, जिसकी आवाज मृदंग और मंजीरों की ध्वनि में जा समाती। कभी कभी मंडली या केवल एक व्यक्ति अपने 'राधे राधे' के गान में विभोर अभय के पास से निकल जाता।

यहाँ तक कि आपसी अभिवादन भी कीर्तन में होता : "जय राधे!" "हरि बोल!" आदि। लोगों का एक-दूसरे के पास से होकर निकल जाना, बैलगाड़ियों का चरमराना,

लोगों का आपस में परिहास करना या बाजार में दिन का अन्तिम सौदा करना, आवारा गायों का घर लौटना, उनके गले में बँधी घंटियों का घनघनाना—हर चीज कृष्ण के सन्दर्भ में होती प्रतीत होती थी। और जब अभय एकांत वंशीगोपाल मन्दिर लौटते, तो वहाँ भी कीर्तनों की ध्वनियाँ उन्हें सुनाई देतीं; हाँ, ये कीर्तन सार्वजनिक न होकर अधिक निजी होते थे। जैसे किसी कमरे में केवल पति-पत्नी कीर्तन में लीन हों; पति मृदंग बजाकर भजन की एक पंक्ति गाता और पत्नी उसका अनुसरण करती हुई उसे दुहराती। वृन्दावन कोई सामान्य नगर नहीं था। वहाँ हर गाने वाले का संगीत मधुर था और हर एक अपने ढंग का दक्ष संगीतज्ञ था और हर एक कृष्ण के गुण गाता था। कृष्ण हर अवसर पर और हर घटना में उपस्थित होते।

श्रील प्रभुपाद : *कृष्ण की महिमा को कोई समझ नहीं सकता। यही हाल वृन्दावन का था। जिस भूमि को वृन्दावन कहते हैं, उसकी क्षमता भी असीम है। जब आप वृन्दावन जायें, तो आप वहाँ अब भी आध्यात्मिक वातावरण की असीम शक्ति पाएँगे। यदि आप वृन्दावन जायें, तो आप देखेंगे कि वहाँ अब भी कितने ही संत और महात्मा वृन्दावन-धाम की उपासना में लगे हैं। जैसे भगवान् कृष्ण उपास्य हैं, उसी तरह उनका धाम वृन्दावन भी उपासना के योग्य है।*

• • •

जाना-आना कठिन हो रहा था। वे सवेरे की गाड़ी से दिल्ली जाते और वहाँ रुकने का स्थान न होने के कारण उसी रात वृन्दावन लौट आते। इससे उन्हें दिल्ली में अधिक समय नहीं मिल पाता था और यह खर्चीला भी था। पहले वे श्रीमान् गुप्त के साथ ठहरते थे, जो विशुद्ध-हृदय वाले सज्जन थे, *गीता* का नियमित पाठ करते थे और साधुओं को ठहरने के लिए स्थान देते थे। अभय ने श्रीमान् गुप्त को अपने *बैक टु गॉडहेड* और पाश्चात्य जगत में प्रचार करने की अपनी इच्छा के बारे में बताया था। यह अच्छी व्यवस्था थी और अभय अकेले बैठकर लिखते रहते। लेकिन कालान्तर में वह कमरा एक दूसरे साधु ने ले लिया।

अपने पर कम से कम खर्च करने पर भी अभय के लिए अनुदानों से यात्रा, मुद्रण और डाक-व्यय के लिए पर्याप्त धन एकत्रित करना कठिन हो गया। *बैक टु गॉडहेड* की प्रतियाँ यों वितरित कर देना मुश्किल नहीं था और वे वृन्दावन में वैसा कर रहे थे। लेकिन लिखना, सम्पादन करना, बेचना और अनुदान के लिए लोगों के पास जाना—यह सारा काम एक अकेले आदमी के लिए मुश्किल हो रहा था। मुद्रक श्रीमान् जैन आश्चर्य से अभिभूत थे कि एक व्यक्ति ऐसे पत्र को लेकर जिसे प्रकाशित करने के लिए उसके पास साधन नहीं है, क्यों अपने को ऐसी कठिनाइयों में डाल रहा है?

श्रील प्रभुपाद : *मैं बैक टु गॉडहेड के लिए दिन-रात काम करता। शुरू में जब मैं गृहस्थ था, तब मुझे चिन्ता न थी कि कोई उसकी कीमत देता है या नहीं देता है। मैं उदारतापूर्वक उसका वितरण करता रहता। लेकिन जब गृहस्थ-जीवन छोड़कर मैं अकेले रहने लगा, कभी वृन्दावन में, कभी दिल्ली में या कभी बैक टु गॉडहेड के विक्रय संवर्धन के लिए यात्रा में, तो वे दिन बड़े कठिन हो गये।*

बैक टु गॉडहेड के पाक्षिक संस्करण का लगातार निकलने वाला बारहवाँ अंक, २० नवम्बर १९५६ ई. को निकालने के बाद अभय के पास पैसे नहीं रहे। श्रीमान् जैन ने साफ कह दिया कि वे केवल मित्रता की खातिर पत्र नहीं छाप सकते। अभय वृन्दावन लौट गये और लिखने में लगे रहे। लेकिन छापने की कोई योजना न थी।

बैक टु गॉडहेड की आर्थिक विफलता इस कारण थी कि लोगों की अभिरुचि कृष्णभावनामृत में नहीं थी; उनके पास 'समय नहीं था।' भारत में कुछ साधु विख्यात और प्रभावशाली थे, लेकिन अभय उनमें से नहीं थे। स्पष्ट था कि अपने आध्यात्मिक गुरु से उन्होंने उपदेश का जो अटल ढंग सीखा था और जिस 'विच्छेदनकारी शैली' में वे खुल्लमखुल्ला प्रतिष्ठित राजनेताओं और पवित्र पुरुषों की आलोचना करते थे, उससे वे लोगों का प्रेमभाव और संरक्षण नहीं जीत सकते थे। भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ने कहा था, "चाटुकारिता मत करो। सच कहो। और यदि कृष्ण प्रसन्न हैं, तो तुम्हें सफलता मिलेगी। धन आयेगा।" और अभय का इस कथन में दृढ़ विश्वास था।

अपने आध्यात्मिक गुरु में विश्वास अभय की सबसे बड़ी सम्पत्ति थी। उनका दृढ़ मत था कि श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती का अनुसरण करने से उन्हें उनके और भगवान् चैतन्य के आशीर्वाद प्राप्त होंगे। यद्यपि विगत दो वर्षों में उन्होंने सामने आये हर मार्ग का अनुगमन किया था और जहाँ तक वह ले गया था वे उस पर चले थे, तथापि उनका लक्ष्य एक ही था, अर्थात् भक्तिसिद्धान्त सरस्वती के आदेश का पालन करना। उन्हें अपने पर विश्वास था। कभी-न-कभी उन्हें भरपूर समर्थन और अनुकूल श्रोता-पाठक मिलेंगे ही। कर्मनिष्ठ सहकर्मी भी उन्हें मिलने ही थे।

अभय को वृन्दावन में अपने एक शिष्य, आचार्य प्रभाकर मिश्र का पत्र मिला और उससे अभय के मन में एक विचार आया। आचार्य प्रभाकर मिश्र बम्बई में भारतीय विद्या भवन के संस्कृत विभाग के सचिव के रूप में कार्य कर रहे थे। उन्होंने श्रील भक्तिवेदान्त प्रभु को बम्बई आमंत्रित किया कि पहले की तरह ही दोनों मिलकर वहाँ उपदेश करें। भारतीय विद्या भवन के संस्थापक-निदेशक राज्यपाल के. एम. मुंशी थे (वही राज्यपाल जिनकी पत्नी ने झाँसी में राधा मेमोरियल को छोड़ देने के लिए उन पर दबाव डाला था)। लेकिन आचार्य प्रभाकर की हाल में ही राज्यपाल से मित्रता हो गई थी और उन्होंने अभय

को सूचित किया था कि राज्यपाल से उन्हें सहायता मिल सकती है। इसलिए जनवरी १९५७ ई. में अभय ने महन्त गोपाल को यह आश्वासन देकर कि मैं लौटकर आऊँगा और अपने कमरे के लिए पाँच रुपए प्रति मास भेजता रहूँगा, बम्बई के लिए प्रस्थान किया।

आचार्य प्रभाकर ने विभाग के आवास में अभय के रहने की व्यवस्था की और उनका परिचय विभिन्न विद्वानों और धर्मानुयायियों से कराया। उसके बाद वे राज्यपाल मुंशी के "संसार में क्या खराबी है" विषय पर एक भाषण सुनने गये। तत्पश्चात् अभय राज्यपाल के पास गये और उनके भाषण की प्रशंसा करते हुए उन्होंने इस बात पर बल दिया कि आसन्न विश्व-आपदाओं को रोकने के लिए एक आध्यात्मिक आन्दोलन जरूरी है। भगवत्-चेतना के बिना भारतीय विद्या भवन में श्री मुंशी का कार्य भी समय की बरबादी सिद्ध होगा। अभय ने लीग आफ डिवोटीज (भक्त-संघ) को पुनर्जीवित करने के सम्बन्ध में अपनी रुचि के बारे में बताया और यह सुझाव दिया कि राज्यपाल की सांस्कृतिक परियोजनाओं को भगवत्-चेतना से समन्वित बनाने के लिए वे भारतीय विद्या भवन के तत्त्वावधान में कार्य कर सकते हैं। राज्यपाल मुंशी ने इस सुझाव को स्वीकार करते हुए अभय को *भगवद्गीता* के अवैतनिक प्राचार्य का पद प्रदान किया। अभय ने इस पद को स्वीकार किया और राज्यपाल को *बैक टु गॉडहेड* की कुछ प्रतियाँ देते हुए उनसे प्रार्थना की कि अवकाश के समय में वे उन्हें पढ़ें।

भगवद्गीता के अवैतनिक प्राचार्य के रूप में अभय हर कक्षा हरे कृष्ण कीर्तन के साथ आरम्भ करते और तब *गीता* पर व्याख्यान देते। वे भगवान् कृष्ण को परम भगवान् के रूप में प्रस्तुत करते। किन्तु शीघ्र ही उन्हें अपने पद की सीमाओं का ज्ञान हुआ। भारतीय विद्या भवन में अपने भक्त-संघ को पुनर्जीवित करने की सम्भावना नहीं दिखाई दी।

कुछ समय बाद अभय भारतीय विद्या भवन के अन्य सदस्यों के साथ वर्ल्ड एकादमी आफ संस्कृत (विश्व संस्कृत परिषद) के पाँचवे वार्षिक सम्मेलन में कुरुक्षेत्र में सम्मिलित हुए (वही कुरुक्षेत्र जहाँ अब से पाँच हजार वर्ष पूर्व भगवान् कृष्ण ने *गीता* का उपदेश दिया था)। राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसाद, राज्यपाल मुंशी और सारे भारत से आये अन्य बहुत से विद्वानों और पंडितों ने भाषण दिए। लेकिन हर एक ने अपना राग अलापा जो भगवान् कृष्ण के उपदेश से अलग-थलग था, इसलिए अभय ने सम्मेलन को समय की बरबादी समझा। चूँकि उनके बोलने का कार्यक्रम नहीं था और चूँकि *गीता* पर हुई अभक्तिपरक चर्चाओं से वे विक्षुब्ध थे और चूँकि उन्हें लगा कि ऐसे सैद्धान्तिक सम्मेलनों से कोई व्यावहारिक लाभ नहीं हो सकता, इसलिए वे कुरुक्षेत्र से वृन्दावन वापस लौट गये।

आचार्य प्रभाकर शीघ्र उनके पास आ गये। वंशीगोपाल मन्दिर के अपने कक्ष में प्रभाकर से बात करते हुए अभय ने भक्त-संघ को पुनर्जीवित करने की अपनी इच्छा फिर

व्यक्त की। बम्बई और कुरुक्षेत्र में हल्के स्तर के सांस्कृतिक कार्यक्रमों को देखकर सच्चे भक्तों की एक संस्था की आवश्यकता को वे और अधिक गहराई से अनुभव करने लगे थे। सांस्कृतिक और धार्मिक प्रतिष्ठान बहुत-से थे और वे चाहते तो उनमें से किसी में शामिल हो सकते थे। पर ऐसी संस्था कहाँ थी, जिससे उनका हार्दिक सम्बन्ध हो सके? केवल भक्त-संघ (या लीग आफ डिवोटीज) ही भगवान् चैतन्य और भक्तिसिद्धान्त सरस्वती के निष्कर्षों का समर्थन करता था : और वह निष्कर्ष था परम भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति का जोरदार विश्वव्यापी प्रचार।

अभय ने लीग आफ डिवोटीज की ओर से "उदार जनता, आधुनिक दार्शनिकों, नेताओं और धर्मानुयायियों" के नाम एक अपील तैयार की। उन्होंने कहा कि लीग के कार्यकलाप होंगे—*बैक टु गॉडहेड* को अँग्रेजी में (और अन्य बहुत-सी भाषाओं में अनुवाद सहित) प्रकाशित करना, युवा-पुरुषों और महिलाओं को विश्वव्यापी प्रचार के लिए प्रशिक्षित करना और मात्र दिव्य साहित्य के प्रकाशनार्थ एक प्रेस चलाना। इन कार्यक्रमों के लिए प्रतिमास लगभग तीन हजार रुपए की जरूरत होगी, और अभय ने सहायता के लिए अपील की। अन्त में उन्होंने कहा, "वृन्दावन सर्वोपरि महत्त्व का पवित्र स्थान है और लीग का मुख्यालय, इसलिए यहाँ स्थापित है।" भारतीय विद्या भवन में *गीता* का अवैतनिक प्राचार्य और हरि भवन का अवैतनिक सचिव—इन प्रभावोत्पादक नई उपाधियों को अपने नाम के साथ जोड़कर अभय ने आचार्य प्रभाकर के सहयोग से *बैक टु गॉडहेड और लीग आफ डिवोटीज के लिए समर्थन प्राप्त करने के लिए एक नया अभियान चलाया।*

कुछ ही दिनों में आचार्य प्रभाकर अपने पद पर बम्बई वापस चले गये और अभय वृन्दावन में फिर अकेले रह गये। वृन्दावन से उन्हें प्रेम था, किन्तु वहाँ उनके पास प्रकाशन और प्रचार का कोई साधन नहीं था। इसलिए वे वहाँ सन्तुष्ट नहीं थे। यदि वे यात्रा पर निकल सकते, तो वे लीग के लिए सदस्य बना सकते थे। उन्हें कानपुर का ध्यान आया, जो निकट था और जहाँ सैकड़ों बड़े-बड़े कल-कारखाने थे और बहुत से धनाढ्य उद्योगपति रहते थे, जिनमें से अपने धंधे के सम्बन्ध में यात्राएँ करते समय कुछ से उनकी भेंट हो चुकी थी। उन्होंने कानपुर जाने का निर्णय लिया। भक्त-संघ की सदस्यता के कुछ फार्म छपाने के बाद उन्होंने महन्त गोपाल को बताया कि वे कुछ महीने बाहर रहेंगे।

महन्त को आश्चर्य हुआ। यद्यपि बहुत से वयोवृद्ध साधु जो वृन्दावन आते थे, वहाँ टिक जाते थे और कुछ तो यह व्रत भी ले लेते थे कि वे वृन्दावन कभी नहीं छोड़ेंगे और यह शान्त-स्वभाव बाबू, बराबर जाता-आता रहता है।

• • •

कानपुर में विभिन्न घरों में रहते हुए और लीग की सदस्यता के लिए प्रचार करते हुए अभय उत्साहपूर्वक उपदेश-कार्य करने लगे। आनन्देश्वर सत्संग मण्डल के अतिथि के रूप में वे गंगा के प्रसिद्ध परमट स्नान घाट पर नियमित रूप से व्याख्यान देते थे। उन्होंने विशेष रूप से उद्योगपतियों और शिक्षकों से परिचय प्राप्त किया। वे उनके साथ प्रायः घंटों बैठते और वार्तालाप करते। उनकी मधुर वार्तालाप शैली और समर्पण-भावना से बहुत से लोग प्रभावित हुए। लेकिन धन-संग्रह बहुत थोड़ा हो पाया। जब वे धनाढ्य उद्योगपतियों से 'संवैधानिक सदस्य' बनने को कहते, तो आमतौर पर वे दो रुपए वार्षिक वाली 'ग्राहक सदस्यता' पसन्द करते। उन्होंने प्रशंसा के कुछ पत्र प्राप्त किये और दो महीने बाद वे कानपुर छोड़कर चले गये।

वृन्दावन में कुछ महीने रहने के बाद अभय ने बम्बई जाकर प्रचार करने का निर्णय लिया। बम्बई में उन्होंने शीघ्र ही दम घोंटने वाले भारतीय विद्या भवन से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया और उसका निवास छोड़ दिया। विभिन्न संरक्षकों के घरों में उन्होंने एक बार में एक-एक सप्ताह रुककर और अपने प्रचार-कार्य में लोगों की रुचि जगाने की कोशिश की। आचार्य प्रभाकर के एक मित्र ने जब रविवार को अभय द्वारा संध्याकालीन सभा को सम्बोधित करने का आयोजन किया, तो अभय ने उसे स्वीकार कर लिया। स्थापित नियमानुसार वे एक गद्दी पर बैठ जाते, उनके अगल-बगल पाँच सौ से लेकर एक हजार तक श्रोता इकठ्ठे हो जाते; अभय ऊँचे स्वर में भगवद्गीता के दर्शन पर बोलते जाते और श्रोता ध्यानपूर्वक उनकी बात सुनते रहते। कई दिन तक संध्या का यह क्रम चला। अभय को व्याख्यान देने के अन्य कई अवसर भी मिले। एक सप्ताह वे बम्बई के एक विष्णु मन्दिर में कई बार बोले।

लेकिन अभय अप्रतिबद्ध श्रोताओं के समक्ष कभी-कभी व्याख्यान देने की अपेक्षा कुछ अधिक करना चाहते थे। उनके अन्दर यह विश्वास बढ़ता जा रहा था कि उन्हें भारत के बाहर प्रचार करना चाहिए। यह विचार, निस्सन्देह, उनके मन में पिछले कुछ समय से बैठा हुआ था। इसका उल्लेख वे भक्त-संघ की नियमावली में, झाँसी में राधा-मेमोरियल की सभाओं में, दिल्ली में बिड़ला मन्दिर की बैठकों में और अन्य कई अवसरों पर कर चुके थे। परिचितों के सामने अनौपचारिक ढंग से तो अपना यह विचार वे सैकड़ों बार व्यक्त कर चुके थे। उनके सारे लेखों में उनका ऐसा स्वप्न गुंथा हुआ था।

वे किसी भी स्थान की यात्रा करने को तैयार थे, यदि अँग्रेजी में प्रचार करने का श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती का आदेश वे पूरा कर सकें। भारत में अँग्रेजी बोलने वालों की संख्या थोड़ी थी, इसलिए अभय पाश्चात्य जगत में जाने का स्वप्न बराबर देखते रहे। यदि वे बम्बई, दिल्ली और कानपुर जा सकते थे, तो लंदन या न्यूयार्क क्यों नहीं जा सकते थे,

जहाँ लाखों-करोड़ों लोग अँग्रेजी बोलते थे और भगवान् चैतन्य के सन्देश से अनजान थे। कानपुर के एक उद्योगपति, वेदप्रकाश को लिखते हुए अभय ने अपने विचार को स्पष्ट किया।

भगवान् चैतन्य ने कहा था *"प्राणिनाम् उपकाराय,"* अर्थात् सभी जीवित प्राणियों के कल्याण के लिए... युद्ध के मैदान में रेड क्रास के लोग घायलों की प्राथमिक चिकित्सा करते हुए पहले उनको लेते हैं, जिनके बच जाने की आशा रहती है। यद्यपि उनके मन में सभी घायल सैनिकों के प्रति समान भाव होता है, किन्तु जिनके बचने की आशा नहीं रहती, कभी-कभी उनकी उपेक्षा हो जाती है।

भारत में स्वराज्य मिलने के बाद भी लोगों की मनोवृत्ति अधिकतर "इंगलैंड निर्मित" विचारों पर आधारित है। यह एक लम्बी कहानी है। किन्तु संक्षेप में, भारत के नेता धर्मनिर्पेक्ष सरकार के नाम पर हर वस्तु में विदेशों का अनुकरण कर रहे हैं। उन्होंने भारत की आध्यात्मिक सम्पदा की निधि को सावधानीपूर्वक ताक पर रख दिया है और वे पश्चिम की भौतिकतावादी जीवन पद्धति का अनुसरण करने में लगे हैं। उनके सभी कार्य गलत निर्णयों वाले, निराश, अपूर्ण और छद्म से भरे हैं।

भारत का वैदिक ज्ञान ऊपर लिखित सभी दोषों से मुक्त है। लेकिन हम भारतवासियों से वर्तमान में ऐसे आश्चर्यजनक वैदिक ज्ञान की उपेक्षा हो रही है। यह उसके गलत उपयोग के कारण है।

यह वेदान्त सूत्र हमारे देश में विभिन्न दलों के अनधिकारी व्यक्तियों द्वारा प्रस्तुत किया जा रहा है और इस तरह जनता को दिग्भ्रमित किया जा रहा है। भारत के नेताओं, उद्योगपतियों और योजना-निर्माताओं के नवजात राष्ट्रीय उत्साह में वेदान्त-सूत्र या *भगवद्गीता* के भी सन्देश को समझने का समय या इच्छा नहीं है। मानवता के कार्य आप बिना सही मार्गदर्शन के नहीं कर सकते।...

अस्तु, विदेशों में प्रचार करने के मेरे विचार का आशय यह है कि वे ज्ञान की भौतिक वृद्धि से ऊब गये हैं। वे वेदान्त-सूत्र या *भगवद्गीता* के मार्ग-दर्शन भरे सन्देश को अधिकारिक ढंग से पाना चाहते हैं। और मुझे विश्वास है कि जब योरप और अमेरिका आदि के लोग उसे स्वीकार कर लेंगे, तो भारत भी पुनः अपने आध्यात्मिक जीवन को लौट जायेगा, क्योंकि भारतवासियों को इस समय अपनी ही सम्पत्ति की उपेक्षा करके भीख माँगने की आदत हो गई है। यह मेरा दृष्टिकोण है। लेकिन जो भी हो, हमें केवल सेवा के अवसर का सदुपयोग करना चाहिए।

प्रचार को अधिक व्यापक बनाने का उनका एक तरीका *बैक टु गॉडहेड* की प्रतियाँ भारत के बाहर के देशों को भेजना था। और अनुदानकर्ता बनने के लिए लोगों को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से उन्होंने यह प्रसिद्ध किया कि अनुदानकर्ता का नाम पत्रिका के प्रत्येक अंक में प्रकाशित किया जाएगा। उनकी आकांक्षा अधिक से अधिक अनुदान प्राप्त करने, पत्रिका की अधिक से अधिक प्रतियाँ छापने और उसे पचास से अधिक देशों को भेजने की थी। उन्होंने संख्या निश्चित कर दी : अमेरिका को दस हजार प्रतियाँ भेजनी थीं, अर्जेंतीना को पाँच सौ, बेलजियम को पाँच सौ, ब्राजील को पाँच सौ, बर्मा को एक हजार, कनाडा को पाँच सौ, चिली को पाँच सौ, चीन को दस हजार, रूस को दस हजार, इंगलैंड को दस हजार आदि आदि। लेकिन अनुदानकर्ता और अनुदान कभी हाथ नहीं आये और *बैक टु गॉडहेड* की योजनाएँ कभी सफल नहीं हुईं।

• • •

अभय ने पाया कि एक ओर भारत के शिक्षित और संस्कृत वर्ग के लोग अपनी आध्यात्मिक संस्कृति को ठुकरा रहे थे, तो दूसरी ओर धार्मिक प्रवृत्ति की जनता हिन्दुत्व के नाम पर प्रचारित परस्पर-विरोधी और अनधिकृत सिद्धान्तों की बाढ़ से उलझन में पड़ रही थी। इसका एक चौंका देने वाला दृष्टान्त उनके सामने तब आया, जब वे १९५८ ई. की ग्रीष्म ऋतु में बम्बई में प्रचार कर रहे थे। एक ऐसे समुदाय द्वारा 'भागवत सप्ताह' का विज्ञापन किया जा रहा था, जिसकी शिक्षाओं का भागवत के सच्चे परम्परा-रूप से विरोध था। *भागवत, श्रीमद्भागवत* भक्ति का सर्वश्रेष्ठ शास्त्र था; कृष्ण का साहित्यिक अवतार था, किन्तु 'भागवत सप्ताह' के आयोजक *श्रीमद्भागवत* का उपयोग निर्विशेषवाद सिखाने और भगवान् कृष्ण के महत्त्व को हीन बनाने में कर रहे थे। मित्रों के माध्यम से अभय को ऐसी अपमानजनक बैठकों के बारे में मालूम हुआ और अन्त में, २८ जुलाई १९५८ ई. को उन्होंने 'भागवत सप्ताह' के मुख्य आयोजक श्री रतनशी को यह प्रार्थना करते हुए लिखा कि वे *श्रीमद्भागवतम्* से अपने को दूर रखें।

> सविनय सूचित करता हूँ कि 'भागवत सप्ताह' के आयोजन के सम्बन्ध में आपका आमंत्रण मुझे 'बम्बई सांस्कृतिक केन्द्र' के सचिव के माध्यम से प्राप्त हुआ। मैं जानता हूँ कि मायावादियों द्वारा अबोध जनता को दिग्भ्रमित करने के लिए भागवत सप्ताह किस प्रकार मनाया जा सकता है। इसलिए न केवल मैंने समारोह में भाग नहीं लिया, वरन् मैंने दूसरों को भी उसमें सम्मिलित न होने की सलाह दी। कारण यह है कि पवित्र भागवत का पाठ ऐसे लोगों द्वारा किया जा रहा

है, जिनकी पहुँच उस महान् धर्म शास्त्र तक नहीं है। उसका पाठ तो केवल ऐसे मुक्त व्यक्ति ही कर सकते हैं जो सभी आडम्बरपूर्ण धार्मिकताओं से स्वतंत्र हो चुके है।... कुछ मित्रों ने, जो आपके 'भागवत सप्ताह' में सम्मिलित हो चुके हैं, मुझे बताया है कि आपकी सभा में कृष्ण की लीलाओं की किस तरह गलत व्याख्या की गई थी, केवल यह बहाना देकर कि कृष्ण के व्यक्तित्व को अनैतिकता के दोष से बचाना है। भविष्य के इन अबोध श्रोताओं के लाभ के लिए महाराज परीक्षित श्रीपाद शुकदेव गोस्वामी को भगवान् श्रीकृष्ण की रासलीलाओं के स्पष्टीकरण के बारे में पहले ही पूछ चुके थे। रासलीला की दिव्य प्रकृति के विषय में किसी मायावादी या लौकिक नैतिकतावादी को क्षमा-याचक होने की जरूरत नहीं है। लीला जो है वह है।

श्लोक संख्या ३० में वर्जित किया गया है कि कोई सांसारिक व्यक्ति रासलीला सुने... या किसी सांसारिक व्यक्ति से रासलीला सुनी जाये। आपकी संस्था में श्रोता और व्याख्यानकर्ता दोनों सांसारिक हैं और मूर्खतावश उनका रासलीला में सम्मिलित होना रुद्र का अनुकरण करने के समान होगा, जो विष के सागर का पान कर गये थे।

अभय ने चेतावनी दी कि ऐसी धार्मिक प्रवंचना के विरुद्ध कानूनी कार्यवाही की जा सकती है। लेकिन भागवत सप्ताह चलता रहा और सैकड़ों प्रवंचित हुए।

एक ओर वैदिक संस्कृति को माननेवाले अनुयायियों के विश्वास को चक्कर में डाला जा रहा था, दूसरी ओर पाश्चात्य-सभ्यता के रंग में रँगे आधुनिक भारतीय वैदिक संस्कृति को पिछड़ी हुई और अप्रासंगिक कहकर त्याग रहे थे। प्रधानमंत्री नेहरू की रुचि आध्यात्मिकता में बिल्कुल ही नहीं थी; वे आधुनिकीकरण के पक्षधर थे और अभय के शब्दों में 'लंदन में निर्मित' विचारों के समर्थक थे। यद्यपि महात्मा गाँधी ने अभय के पत्रों का उत्तर कभी नहीं दिया, पर कम से कम, उनकी रुचि आध्यात्मिकता में थी, परन्तु उनके अनुयायी पण्डित नेहरू की नहीं थी। तब भी भारत के नेता जिस तरह अपने देश की आध्यात्मिक विरासत को त्याग रहे थे, उससे चिन्तित होकर अभय ने पंडित नेहरू को लिखने का निश्चय किया।

यद्यपि बम्बई में अभय लगभग बेघरबार थे, तो भी १९५८ ई. के अगस्त में उन्होंने साहसपूर्वक प्रधानमंत्री को लिखा और अपना यह विश्वास प्रकट किया कि भारत की आध्यात्मिक संस्कृति को न केवल देश में पुनर्जागरित करना चाहिए, वरन् उसका वितरण पाश्चात्य जगत में भी होना चाहिए। उन्होंने पंडित नेहरू को स्मरण कराया कि प्राचीन

यूनान से लेकर अणु–युग तक पाश्चात्य जगत केवल भौतिकता में डूब रहा था और इसलिए उसे शान्ति कभी नहीं मिली। यदि नेहरू भी भौतिकता के पथ का अनुसरण करते रहे, तो उसका परिणाम केवल विग्रह और युद्ध होगा।

> इसलिए भारत को पाश्चात्य जीवन पद्धति का अनुसरण करने में अपना समय नष्ट नहीं करना चाहिए। आपने स्वीकार किया है कि भारतीय संस्कृति की स्थिति बहुत उच्च कोटि की है, फिर भी आप भौतिक सम्पन्नता, ज्ञान की वैज्ञानिक उन्नति द्वारा लाना चाहते है। लेकिन वह वैज्ञानिक ज्ञान क्या है? आध्यात्मिकता भी उन्नत वैज्ञानिक ज्ञान है। वैज्ञानिक ज्ञान की भौतिक उन्नति सामान्य जनता को भौतिक सम्पन्नता भी नहीं दे सकती। क्या आप समझते हैं कि बिना घोड़े की गाड़ी से या दूरभाष या रेडियो सम्प्रेषण या इस तरह की अन्य क्षणिक जीवन–सुविधाओं से भौतिक सम्पन्नता की प्राप्ति हो सकती है? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। भौतिक सम्पन्नता का अर्थ है कि लोगों के पास खाने को या अपने शरीर को पूर्णतया स्वस्थ रखने के लिए पर्याप्त हो। क्या आप समझते हैं कि आपकी विभिन्न योजनाओं से ऐसी भौतिक सम्पन्नता आ गई है या आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता ऐसी सम्पन्नता ला सकती है? यदि ऐसी सम्पन्नता आ भी जाये, तो भी अशान्ति जारी रहेगी, जब तक कि जीवन में आध्यात्मिक संतोष न आये। शान्ति का रहस्य यही है।

पाश्चात्य देशों में गये बिना भी अभय ने अपना यह विश्वास प्रकट किया कि अमेरिका के, यहाँ तक कि रूस के लोग भी आध्यात्मिक अनुभूति के लिए लालायित हैं; केवल भौतिक उन्नति से उन्हें संतोष नहीं हो सकता। इसलिए पंडित नेहरू को चाहिए कि भारत का आध्यात्मिक ज्ञान देकर पश्चिम के अपने मित्रों की सहायता करें।

> दरिद्रता का अर्थ ज्ञान की दरिद्रता है। चन्द्रगुप्त के काल में प्रधानमंत्री चाणक्य घासफूस की झोपड़ी में रहते थे, लेकिन वे भारत के अधिनायक थे। महात्मा गाँधी ने स्वेच्छा से तथाकथित गरीब आदमी की तरह रहना स्वीकार किया और वे भारत के भाग्य विधाता बने। लेकिन क्या वे दरिद्रता से आक्रांत थे? उन्हें अपने आध्यात्मिक ज्ञान पर गर्व था। इसलिए आध्यात्मिक ज्ञान ही किसी व्यक्ति को सम्पन्न व्यक्ति बनाता है, न कि रेडियो–सेट या मोटर–कार।

१९३०–४० ई. के बीच नेहरू परिवार अभय के प्रयाग फार्मेसी से दवाएँ खरीदता था

और अभय ने अब इलाहाबाद के एक पुराने मित्र के नाते पंडित नेहरू से प्रार्थना की। जिस तरह अभय ने महात्मा गाँधी से प्रार्थना की थी, उसी तरह उन्होंने नेहरू से प्रार्थना की कि वे अपनी राजनीतिक जिम्मेदारियों को छोड़ दें "और संसार के एक जन-प्रिय सज्जन की भाँति अपने जीवन का शेष भाग इस संगठित आध्यात्मिक आन्दोलन को देकर पश्चिम के भौतिकतावादी विज्ञान और भारत की आध्यात्मिक अनुभूतियों के बीच एक वास्तविक सामंजस्य स्थापित करें।" गाँधी को लिखे गये पत्र की तरह नेहरू को लिखे गये पत्र का भी कोई उत्तर नहीं आया।

अभय के बम्बई के पहले के परिचितों में एक भूमिपति श्रीमान् हरवंशलाल थे, जिन्होंने अभय को एक बार विश्वास दिलाया था कि जब भी जरूरत होगी, वे अभय के आवास की व्यवस्था कर देंगे। १९५८ ई. के ग्रीष्म काल में अभय हरवंशलाल से मिलने गये, लेकिन पता चला कि वे पाश्चात्य देशों को गये हैं। जब अभय को यह मालूम हुआ कि हरवंशलाल केवल व्यवसाय के लिए ही नहीं, वरन् एक सांस्कृतिक मिशन पर गये हैं, तो उनके मन में एक भारतीय के पाश्चात्य जगत में सांस्कृतिक मिशन पर जाने की सराहना का विचार उदय हुआ। उन्होंने हरवंशलाल को अपने ठहरने के लिए स्थान के विषय में लिखा और सांस्कृतिक मिशन की अपनी धारणा भी प्रस्तुत की। अभय को मालूम था कि पश्चिम के बहुत से लोग भारतीय संस्कृति का सम्मान करते हैं। अपने जर्मन गुरुभाई से वे सुन चुके थे कि यद्यपि जो भारतीय पश्चिम में, और विशेषकर जर्मनी में गये थे उनका अच्छा स्वागत हुआ, तो भी कभी कभी उनके भारतीय संस्कृति के अपने ज्ञान की परीक्षा ली जाती थी। इसलिए अभय ने हरवंशलाल को सलाह दी कि वे अपनी यात्रा में भारतीय संस्कृति के सही निष्कर्ष को लोगों के सामने रखें।

> मैं समझता हूँ कि आवश्यकता की इस घड़ी में जबकि मानव समाज के सिर पर अणु-बम मँडरा रहा है, लोगों को भारतीय सन्देश की जरूरत है।... इसलिए जब आप वहाँ गये हैं, कृपा करके उन विदेशों की जनता के कल्याण के लिए कार्य आरम्भ करें।

स्पष्ट था कि अभय को स्वयं वहाँ जाना अच्छा लगता था। उन्होंने स्मरण कराया कि उनके आवास के लिए हरवंशलाल ने वादा किया था।... "मैं बम्बई में समुचित आवास-व्यवस्था न होने के कारण अपना समय बड़ी असुविधा में बिता रहा हूँ।" लेकिन यात्रा पर निकले हरवंशलाल को पत्र नहीं मिल पाया।

यथाशीघ्र पाश्चात्य देशों को जाने के इच्छुक अभय बम्बई में अपने एक गुरुभाई

कृपासिन्धु के पास गये और उनसे सहायता की माँग की।

कृपासिन्धु : *वे मेरे घर पर आये और अमेरिका जाने के लिए उन्होंने मुझसे सहायता माँगी। उन्होंने मुझे बैक टु गॉडहेड की कुछ प्रतियाँ दीं और कहा कि उन्हें लोगों को दिखाकर मैं उनके लिए सहायता माँगू। मैंने इस सम्बन्ध में कुछ करने का प्रयत्न किया। मैंने अभय बाबू का परिचय एक बड़े उद्योगपति, हेमराज खण्डेलवाल से कराया। मैं भी उनके साथ गया। हम तीनों साथ बैठ गये और मैंने हेमराज को बताया कि अभय पश्चिम के देशों में जाना चाहते हैं; वे एक सच्चे भक्त हैं; लेख लिख रहे हैं और बहुत सारे कार्य कर रहे हैं। लेकिन हेमराज ने अन्त में सहायता नहीं की।*

कृपासिन्धु ने अभय को बताया कि बम्बई के गौड़ीय मठ की सहायता कभी-कभी सिन्धिया स्टीमशिप लाइंस की मालकिन, व्यवसाय जगत की जानीमानी धर्मपरायण महिला, श्रीमती सुमति मोरारजी ने की थी। अभय ने उनसे मिलने की कोशिश की, लेकिन वे मिल न सके। तथापि उनकी भेंट श्रीमती मोरारजी के एक कर्मचारी से हुई, जो सिन्धिया कम्पनी के उपप्रबन्धक थे। उन्होंने अभय की बात सुनी और अभय को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उनका उत्तर उदार था। सिन्धिया कम्पनी के उपप्रबन्धक ने अभय को एक सच्चा साधु समझकर उनकी हिन्दुस्तान से संयुक्त राज्य की समुद्री-यात्रा पर पचास प्रतिशत रियायत देने कि पेशकश की। उन्होंने इसे लिखकर भी दे दिया। अभय तुरन्त अपना पासपोर्ट और प्रवेश पत्र प्राप्त करने के प्रयत्न में लग लए। लेकिन वे आधा किराया भी नहीं जुटा सके।

१९५६ ई. में वे दिल्ली में संघर्षरत और आवासहीन रहे थे। और अब, जब उन्होंने वृन्दावन से बाहर रहकर गत दो वर्ष की अपनी यात्राओं पर विचार किया, तो उन्हें लगा कि उनकी स्थिति में सचमुच कोई सुधार नहीं हुआ था; कदाचित् कृष्ण नहीं चाहते थे कि इस तरीके से उन्हें सफलता मिले। लेकिन एक ठोस चीज उन्होंने अवश्य प्राप्त कर ली थी; वह थी पश्चिम के देशों में जाने और वहाँ प्रचार-कार्य करने का दृढ़-निश्चय। वहाँ उन्हें सफलता अवश्य मिलेगी।

• • •

अभय वृन्दावन वापस आये, अकेले और गरीबी की हालत में। वे बासठ वर्ष के हो गये थे, लेकिन अवकाश-ग्रहण करने की बात नहीं सोच रहे थे। उनकी चित्त-वृत्ति पहले से भी अधिक विवेचनशील और वैराग्यमय हो रही थी। क्योंकि उन्हें कुछ ही लोग जानते थे और वे लिखने में लगे रहना चाहते थे, इसलिए उन्होंने अपने को सबसे अलग रखा।

वृन्दावन के अधिवासी के रूप में वहाँ के गम्भीर शान्त वातावरण में उन्हें आनन्द

आया। वे एकान्त में बैठकर अपनी खिड़की के बाहर शान्तिपूर्ण ढंग से प्रवाहित होती यमुना का दृश्य देखा करते। केशी घाट का पड़ोस शान्त था; यद्यपि सूर्योदय के पूर्व कुछ भक्तों के नहाने और मंत्रोच्चारण करने की आवाज सुनाई देती। पूर्णिमा की रात में यमुना एक शीतल देदीप्यमान रत्न की भाँति प्रतीत होती थी। और सवेरे सूर्य एक लाल धब्बे की भाँति अपारदर्शी दीवार के उस ओर जलती अग्नि की तरह प्रकट होता। तब जैसे उसमें विस्फोट होता और सारा आकाश साफ हो जाता। जब तक दोपहर में सूर्य प्रचण्ड रूप से धधकने न लगता, जब कमरा छाया में होता, अभय अपनी खिड़की से ऊँचे आकाश में उसके झिलमिलाते रूप को देखा करते। नीचे यमुना के शान्त रूपहले जलविस्तार में उसका प्रतिबिम्ब चमचमाता रहता। अपने कमरे से बाहर गये बिना ही अपने दरवाजे पर खड़े होकर अभय मैत्रीपूर्ण वृन्दावन में मीलों तक मन्दिरों के जमघट देख सकते थे। मन्दिरों से निकलती हुई यथासमय कीर्तनों और घंट-घड़ियालों की ध्वनियों और घरों तथा सड़कों से उठती भगवान् कृष्ण के प्रति गाए जाते हुए स्वतः स्फूर्त भजनों की गूंज से वातावरण भक्तिमय बना रहता था।

अपने बरामदे में अभय बिना किसी विघ्न-बाधा के जप कर सकते थे। वे सादा, लगभग निश्चिन्त, कम से कम भौतिक आवश्यकताओं वाला जीवन-यापन कर रहे थे। रात में वे थोड़ा विश्राम करते, दोपहर में अल्प प्रसाद ग्रहण करते और बहुत सादे पहनावे से काम चलाते थे। उन्हें न किसी की चाटुकारी करनी थी, न किसी का भरण-पोषण करना था, न किसी के जीवन की व्यवस्था करनी थी। उनका मन स्वतंत्र था और उनकी बुद्धि स्वतंत्र थी और दोनों ही उनके आध्यात्मिक गुरु की सेवा के विचार में निरन्तर निरत रहते थे। उनकी वर्तमान परिस्थितियाँ उन्हें आगे के महत्त् कार्य के लिए तैयारी जैसी लगती थीं। अवस्था अधिक हो जाने पर भी उन्हें लगता था कि उन्होंने अपना कार्य अभी आरम्भ ही किया है। लेकिन उनमें आत्मविश्वास था। एक अखिल-विश्व भक्त-संघ स्थापित करने का वे दिव्य स्वप्न देख रहे थे। वह कोरा स्वप्न नहीं था। यद्यपि वे निश्चयपूर्वक नहीं जानते थे कि वह कैसा रूप ग्रहण करेगा। लेकिन वे अपना कर्तव्य जानते थे। फिलहाल वे अपने लेखों और पुस्तकों के माध्यम से अपने दिव्य स्वप्न की, जो उनके आध्यात्मिक पूर्व गुरुओं का भी स्वप्न रहा था, व्याख्या करने में लगे थे। फिर ज्योंही सम्भव होगा, वे पाश्चात्य देशों में जायँगे। वे इस निष्कर्ष पर पहुँच चुके थे कि पश्चिम के लोग आध्यात्मिक बोध से रहित, भौतिक रूप से सुविधासम्पन्न जीवन से सन्तुष्ट नहीं थे। परम सत्य का सन्देश उन्हें भारतीयों से भी अधिक ग्राह्य होगा। वे जानते थे कि उन्हें जाना चाहिए। और यदि कृष्ण की इच्छा हुई, तो वे अवश्य जाएँगे।

अभय वृन्दावन में बहुत किफायत के साथ रहते थे। वे हर आमदनी और खर्च का

ठीक हिसाब रखते थे। उनके पास सावधानीपूर्वक रखी हुई एक खाता-बही थी, मानो वे कोई बड़ा व्यवसाय चला रहे हों, यद्यपि उनकी खरीददारी थोड़े दूध, कुछ सब्जियों, खाना पकाने के लिए कोयले, और बस के टिकटों तक सीमित थी। डाक के टिकटों पर उनका व्यय सबसे अधिक था।

• • •

अभय ने एक बँगाली कविता लिखी 'वृन्दावन-भजन'। उसके प्रारम्भिक पद विशेष रूप से आत्म-विवेचक और व्यक्तिगत थे।

(१)
मैं वृन्दावन धाम में अकेला बैठा हूँ।
इस मनोदशा में मुझे बहुत-सी अनुभूतियाँ हो रही हैं।
मेरे पत्नी, लड़के, लडकियां, पोते सभी हैं।
लेकिन मेरे पास धन नहीं है, इसलिए वे निष्फल वैभव हैं।
कृष्ण ने मुझे भौतिक प्रकृति के नग्न रूप का बोध करा दिया है;
उनके बल से आज यह सब मेरे लिए स्वाद-हीन हो गया है।
यस्याहं अनुग्रहणामि हरिष्ये तद्-धनं शनैः
"मैं जिस पर कृपा करता हूँ, उसका धन धीरे-धीरे हर लेता हूँ।"
सर्व-कृपामय की इस कृपा का बोध मुझे किस प्रकार हुआ?
(२)
हर एक ने मेरा त्याग कर दिया है, मुझे धनविहीन देखकर—
पत्नी, सम्बन्धी, मित्र, भाई, हर एक ने।
यह दुर्गति है, लेकिन इस पर मुझे हंसी आती है, मैं अकेला बैठता हूँ, और हँसता हूँ।
इस मायारूपी संसार में मैं सचमुच किस से प्रेम करता हूँ?
मेरे प्रिय माता-पिता अब कहाँ चले गये हैं?
और कहाँ गये हैं मेरे सभी पूर्वज, जो मेरे अपने ही लोग थे?
मुझे उनका समाचार कौन देगा, बताओ कौन?
और इस पारिवारिक जीवन का जो कुछ शेष रह गया है, वह एक नामावली मात्र है।
(३)
जैसे सागर जल के ऊपर का फेन फिर सागर में लीन हो जाता है,
इस माया-संसार का खेल उसी तरह का है।
न कोई माता है, न पिता या निजी सम्बन्धी;

सागर के फेन की तरह वे सब अल्पकाल तक रहते हैं।
जैसे सागर-जल का फेन फिर सागर में लीन हो जाता है,
वैसे ही पांच तत्त्वों से बना यह शरीर विनाश को प्राप्त होता है।
शरीर में आवद्ध आत्मा इस तरह कितने शरीर धारण करता है?
उसके सारे सम्बन्धी केवल उसके अल्पकालिक शरीर से सम्बन्धित होते हैं।

(४)

किन्तु आध्यात्मिक मंच पर बन्धु, हर एक आपका सम्बन्धी है।
इस सम्बन्ध में माया की गंध नहीं होती।
परम भगवान् हर एक के आत्मा हैं।
उनके सम्बन्ध से विश्व का हर जीव अन्य से अभिन्न है।
बंधु, आपके सभी सम्बन्धी, सभी संख्यातीत जीव
जब कृष्ण के सम्बन्ध से देखें है, तो सामंजस्यपूर्ण लगते हैं।
कृष्ण को विस्मृत कर, जीव इन्द्रिय-भोग चाहता है
और परिणाम रूप वह माया में दृढ़ता से जकड़ा जाता है।

• • •

एक बार अक्तूबर महीने में दिल्ली की यात्रा करने पर अभय को कविराज वैद्यनाथ सरकार से *बैक टु गॉडहेड* की एक हजार प्रतियाँ छापने के लिए अनुदान मिला। अभय ने तुरन्त *बैक टु गॉडहेड* का २० अक्तूबर का संस्करण प्रकाशित किया और उसके मुख-पृष्ठ पर अनुदानकर्ता का नाम दिया। दो वर्षों में *बैक टु गॉडहेड* का यह पहला अंक था। एक दूसरे अनुदानकर्ता रामलाल कपूर एंड सन्स के श्रीमान् सुबोध कुमार कपूर थे, जिन्होंने श्रीमान् सरकार के उदाहरण का अनुसरण किया और २० नवम्बर का अंक निकालने के लिए एक हजार प्रतियों के लिए अनुदान दिया।

नवम्बर के अंक में मुख-पृष्ठ का लेख था "सत्य और सौन्दर्य।" *दि टाइम्स आफ इंडिया* के एक सम्पादकीय में इस बात का विवेचन था कि सत्य और सौन्दर्य एक-दूसरे से सुसंगत हैं या नहीं और यह मत प्रकट किया गया था कि सत्य सदैव सुन्दर नहीं होता वरन् वह अधिकतर कुरूप और अप्रिय होता है। अभय असहमत थे। उनका कहना था कि "सत्य इतना सुन्दर है कि उसके निमित्त बहुत से ऋषियों, सन्तों और भक्तों ने सबकुछ त्याग दिया है... लेकिन अनादि काल से हम सत्य के नाम पर असत्य से प्रेम करने के अभ्यस्त हो गये हैं।" फिर भी अभय इस बात पर सहमत थे कि लौकिक सत्य और सौन्दर्य सुसंगत नहीं होते। लौकिक सत्य न केवल सुन्दर नहीं होता, वह सत्य भी नहीं

होता। लौकिक सौन्दर्य वास्तविक सौन्दर्य नहीं है। अभय ने व्याख्या के रूप में एक कहानी का वर्णन किया।

एक बार एक व्यक्ति का एक सुन्दर लड़की से प्रेम हो गया। लड़की उससे विमुख बनी रही। जब उस व्यक्ति ने आग्रह किया तो लड़की ने उससे सात दिन रुक जाने के लिए प्रार्थना की; उसके बाद वह उसका प्रेम स्वीकार कर लेगी। अगले सात दिन में लड़की ने तेज जुलाब की दवा का इस्तेमाल किया। फलतः उसे बार बार कै और दस्त आये। इन्हें वह एक बाल्टी में रखती गई। इस प्रकार "वह तथाकथित सुन्दर लड़की दुर्बलकाय होकर कंकाल मात्र रह गई; उसका रंग काला हो गया और सुन्दर आँखे खोपड़ी के कोटर में धँस गईं।"

> प्रेमी व्यक्ति निश्चित समय पर खूब सज-धजकर और सुशील बनकर गया और एक प्रतीक्षा-रत लड़की से, जो बहुत खिन्न दिखाई देती थी, उस सुन्दर लड़की के बारे में पूछा जिसने उसे वहाँ बुलाया था। वह व्यक्ति पहचान नहीं सका कि प्रतीक्षा-रत लड़की वही सुन्दर लड़की थी, जिसके बारे में वह पूछ रहा था। वह बहुत दयनीय अवस्था में थी, लेकिन वह मूर्ख मनुष्य लड़की के बार-बार बताने पर भी उसे पहचान न सका। दवा के प्रभाव से ही यह सब हुआ था; उसका रूप बदल गया था।
>
> अन्त में लड़की ने उस बलवान् पुरुष को अपनी सुन्दरता की कहानी बताई और कहा कि उसने अपनी सुन्दरता के तत्त्वों को अलग करके उन्हें बाल्टियों में एकत्र कर दिया है। उसने यह भी कहा कि वह पुरुष बाल्टियों में एकत्रित सुन्दरता के रसों का आनन्द ले सकता है। लौकिक प्रेमी पागल पुरुष सुन्दरता के रसों को देखने को सहमत हो गया और इस प्रकार वहाँ पहुँचाया गया, जहाँ पतले दस्त और कै का ढेर जमा था जिससे असहनीय दुर्गंध निकल रही थी। इस तरह सुन्दरता के रस की पूरी कहानी उसके लिए उद्‌घाटित हो गई।

अभय ने बल देते हुए लिखा कि जो साहित्य श्री भगवान् के परम सत्य और सौन्दर्य का वर्णन नहीं करता, वह कै और दस्त से बढ़कर नहीं है, चाहे वह काव्य और दर्शन के ही रूप में क्यों न प्रस्तुत किया जाये।

"मानक नैतिकता" लेख में अभय ने व्याख्या की कि "नैतिकता ऐसे कार्य का मानदण्ड है, जिससे श्री भगवान् प्रसन्न हों।" धर्मशास्त्रों में ऐसे नैतिक विधान हैं, जो अवैध यौन-सम्बन्ध, पशु-वध, मादक द्रव्य-सेवन और द्यूत-क्रीड़ा मना करते हैं। अभय ने कहा

कि सार्वजनिक नेता के रूप में महात्मा गाँधी की सफलता इन नैतिक सिद्धान्तों के पालन के कारण ही थी। अभय ने विवाह की वैदिक प्रथा की भी प्रशंसा की : "यौवनारम्भ होने पर एक स्त्री को पुरुष की इच्छा होती है और यदि उस अवधि के बीच उसका विवाह नहीं कर दिया जाता और उसे युवा लड़कों से मिलने-जुलने दिया जाता है, तो या तो... उस लड़की का या युवा लड़के का पतन संभावित है।" परिवर्तित होती हुई सामाजिक परिस्थितियों में भी अभय का तर्क था कि "स्त्री-पुरुष को एक-दूसरे के साथ अविवाहित सम्बन्ध केवल इसलिए नहीं करना चाहिए कि सामाजिक परिस्थितियाँ बदल रही हैं, क्योंकि स्त्री के साथ अवैध सम्बन्ध सारी अनैतिकता की शुरुआत है।"

"भ्रान्त विद्वान" लेख में अभय ने डॉ. राधाकृष्णन के द्वारा सम्पादित *भगवद्गीता* के संस्करण की कड़ी आलोचना की, विशेषकर नवम अध्याय के चौंतीसवें श्लोक की जिसमें भगवान् कृष्ण कहते हैं कि मनुष्य को उनका सदैव चिन्तन करना चाहिए और उनका भक्त होना चाहिए। डॉ. राधाकृष्णन की टिप्पणी थी कि "यह अवतारी कृष्ण नहीं हैं, जिनके प्रति हमें पूर्णतः समर्पित होना है, वरन् उसके प्रति जो अजन्मा, अनादि और शाश्वत है और जो कृष्ण के माध्यम से बोलता है।" यद्यपि *भगवद्गीता* का स्पष्ट अर्थ यही है कि हमें परम भगवान् कृष्ण के प्रति समर्पित होना चाहिए, लेकिन डॉ. राधाकृष्णन की तरह निर्विशेषवादी लोग इस स्पष्ट अर्थ को अपने वाग्जाल से अस्पष्ट कर देते हैं।

• • •

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती के तिरोधान-दिवस पर अभय को अपने आध्यात्मिक गुरु के वियोग की तीव्र अनुभूति हुई। वे भलीभाँति समझते थे कि भक्तिसिद्धान्त के उपदेश उनकी भौतिक उपस्थिति से अधिक महत्त्वपूर्ण थे और यह कि उनके आध्यात्मिक गुरु वस्तुतः अपने उपदेशों में उपस्थित थे; इस प्रकार अभय सदैव ही अपने आध्यात्मिक गुरु के साथ रहते आये थे। तब भी उस पुण्यतिथि पर अभय को वियोग की अनुभूति हुए बिना न रही। उन्हें याद आया कि किस तरह १९३२ ई. में वे एक गृहस्थ और नये शिष्य थे। उस समय वे इतनी सेवा करने के लिए स्वतंत्र नहीं थे, जितने आज हैं। किन्तु उन्हीं दिनों में वे अपने आध्यात्मिक गुरु को प्रत्यक्ष देख सके थे, उनके समक्ष प्रणति निवेदित कर सके थे, उनके प्रसाद का उच्छिष्ट ग्रहण कर सके थे, उनके साथ चल सके थे, उनकी आवाज सुन सके थे और उनकी कृपा-दृष्टि पा सके थे। अभय को उनसे अपने मिलने के अवसरों की याद आती रही।

श्रील भक्तिसिद्धान्त का मिशन कितना जोरदार था! उनके छापाखाने रात-दिन चलते रहते थे। उनसे पत्रिकाएँ, पुस्तकें और दैनिक *नदिया प्रकाश पत्र* निकलते रहते थे। और

योरप, प्रचार के लिए सम्भावनाओं से पूर्ण, एक नया क्षेत्र था। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के संचालन में गौड़ीय मठ ने माया की शक्तियों के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया था और श्रील भक्तिसिद्धान्त ने अपने सभी भक्तों को निर्भय बना दिया था। अभय अपने आध्यात्मिक गुरु की सेवा के लिए सदैव तत्पर थे; वे गौड़ीय मठ के मुख्यालय कलकत्ता में रहकर सेवा करना चाहते थे। लेकिन वे सेवा कैसे करें इसका ठीक पता उन्हें नहीं था, जब तक कि श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती का अन्तिम पत्र उन्हें प्राप्त नहीं हो गया।

अभय ने अपने आध्यात्मिक गुरु के तिरोधान के बाद के बीस साल से भी अधिक समय पर दृष्टिपात किया। गौड़ीय मठ का उसके नेताओं द्वारा विध्वंस हो गया था और अंधड़ में गिरे पत्तों की भाँति सभी लोग बिखर गये थे। जो क्षति हुई वह अकथनीय थी। और यह कहानी पुरानी पड़ चली थी कि बड़े-बड़े संन्यासियों ने किस प्रकार अपने आध्यात्मिक गुरु के आदेशों का उल्लंघन किया; एक-दूसरे के विरुद्ध षड्यंत्र रचे; झगड़े किये और मुकदमे लड़े। हिंसापूर्ण दलगत संघर्ष हुए और झूठे लोगों ने विश्व आचार्य होने के दावे किये—और कौन-सा दल था जो सही रास्ते पर था? नहीं, दोनों गलत थे, बिलकुल गलत, क्योंकि गौड़ीय मठ का विघटन हो गया था। अब दर्जनों छोटे-छोटे मठ बन गये थे; कोई प्रचार-कार्य नहीं रह गया था, पहले जैसा वास्तविक प्रचार-कार्य नहीं था, जब सिंह-गुरु अभय ने मायावादियों के दिलों में डर पैदा कर दिया था और जोरदार युवा प्रचारकों का दल सारे भारत और विश्व में फैला दिया था। और गौड़ीय मठ के विघटन से सबसे बड़ी हानि सामान्य जनता की, अभक्तों की हुई, जिन्हें माया के प्रहारों से मुक्ति दिलाने का अब कोई मार्ग नहीं रह गया था। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ने एक आध्यात्मिक क्रान्ति आरम्भ की थी, किन्तु वह क्रान्ति अब माया द्वारा विजित हो गई थी। गौड़ीय मठ के अवशिष्ट खंड आत्म-सन्तुष्ट संकीर्ण-मन, नि:शक्त इकाइयों के रूप में स्थापित हो गये थे। और इससे हानि सामान्य जनता की हुई।

अभय अपने आध्यात्मिक गुरु की स्मृतियाँ टटोलते रहे। उन्हें इस बात से सुरक्षा की अनुभूति हुई कि श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती के साथ उनका सम्बन्ध वैसा ही था और अभी तक चल रहा था। तब भी उन्हें लाचारी अनुभव हुई। वे अपने आध्यात्मिक गुरु के अँग्रेजी में प्रचार करने के आदेश का पालन परिश्रमपूर्वक कर रहे थे, लेकिन उनकी प्रत्यक्ष उपस्थिति के बिना वे अपने को बहुत छोटा और अकेला पाते थे। ऐसे मौकों पर उनके मन में अपना परिवार और व्यवसाय छोड़ने की बुद्धिमानी पर शंका होने लगती थी।

श्रील भक्तिसिद्धान्त की अनुपस्थिति और गौड़ीय मठ के विघटन पर परिताप प्रकट करते हुए उन्होंने बँगाली में 'विरह-अष्टक' शीर्षक से एक कविता की रचना की।

श्रील प्रभुपाद, आप दुख-ग्रस्त जीवात्माओं के प्रति सदैव दयालु हैं,
आपके विरह की इस बेला पर मुझे केवल निराशा दिख रही है।
दया के असीम सागर नित्यानन्द ने माया का खंडन करके,
असीम भगवत्-प्रेम के सागर का वितरण किया।
जाति-गोसाईं ने स्रोत अवरुद्ध कर दिया,
किन्तु अपने आगमन से, हे स्वामी, आपने माया का भंडाफोड़ दिया।
इस प्रकार एक बार फिर हर एक प्रेम के सागर में निमज्जित हुआ,
मुझ जैसा पतित, अकिंचन और पापी भी।
भगवान् चैतन्य के आदेश के बल पर,
आपने अपने सेवकों को गुरु बनाकर द्वार-द्वार पर भेजा,
सागर से हिमालय तक प्रचार-कार्य होने लगा।
अब आपकी अनुपस्थिति में सर्वत्र अंधकार हो गया है।
हे श्रील प्रभुपाद, आप दुख-ग्रस्त जीवात्माओं के प्रति सदैव दयालु हैं;
आपके विरह की इस बेला में मुझे केवल निराशा दिखाई देती है।
जिस तरह अद्वैत प्रभु भगवान् गौर को लाए,
उसी तरह भक्तिविनोद ने प्रार्थना की।
उनका उत्साह आपको लाया; उनके उत्साह के बल पर आप आये,
और हर एक को यह बोध कराया कि भारत एक पवित्र देश है।
जो कोई भारत-देश में जन्म लेता है,
उसे चाहिए कि पहले अपने जीवन को श्रेष्ठ बनाए और तब
दूसरों को उपदेश दे।
इस महामंत्र का सन्देश आपने सर्वत्र प्रचारित किया।
अब आपकी अनुपस्थिति में, हे स्वामी, सर्वत्र अंधकार है।
आपका कृपा-सागर फिर अवरुद्ध कर दिया गया है।
इस घोर दुख के भाले से मेरा हृदय छिद गया है।
भगवान् चैतन्य के सन्देश के बिना केवल किंकर्तव्यविमूढ़ता का राज है।
इससे हर वैष्णव आपके विरह से दग्ध है।
प्रतिबद्ध आत्मा एक बार फिर अंधकार में डूब गये हैं।
वे शान्ति खोज रहे हैं, किन्तु चिन्ता के सागर में डूबते जा रहे हैं।
हे श्रील प्रभुपाद, आप दुखग्रस्त जीवात्माओं के प्रति सदैव दयालु हैं।
आपके विरह की इस बेला में मुझे केवल निराशा दिखाई देती है।

अभय की दृष्टि में अंधकार छाया था। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती के जीवन-काल में विकसित प्रचार के सुनहरे युग का अन्त हो गया था। अभय ने लिखा कि, "माया के प्रभाव से अब सर्वत्र अंधकार का राज है। सभी भक्ति उपदेशों का नाश हो गया है। अब सबकुछ उलटा हो गया है।" सारे संसार का उद्धार करने वाले दैवी-शक्ति-सम्पन्न उस महान् व्यक्तित्व के बारे में सोचते हुए अभय ने अपनी लाचारी और दुर्बलता व्यक्त की : "उन लोगों के कारण जो भक्ति में स्थिर नहीं हैं, बहुत सी शाखाएँ पनप गई हैं।... आपका सच्चा सन्देश किसी के कर्ण-छिद्रों में प्रवेश नहीं कर पाया। संकीर्तन आन्दोलन के लिए मैं शक्ति कहाँ से पाऊंगा ?" अपने आध्यात्मिक पिता के बिना वह छोटा सा आध्यात्मिक शिशु कैसे बच सकेगा ? अब संसार का उद्धार कौन कर सकेगा, जो पहले से भी अधिक आपदाग्रस्त था ?

श्रील भक्तिसिद्धान्त ने कहा था कि मृत व्यक्ति उपदेश नहीं दे सकता; केवल जीवित व्यक्ति ही उपदेश दे सकता है। गौड़ीय मठ की विफलता पर अभय और अन्य लोगों को जब तक गहरा दुख रहेगा, तब तक जीवन और आशा रहेगी : "यदि हर एक यह अधिकार प्राप्त कर ले और बाहर जाकर शिष्य बनाए, तो संसार के दुख-ग्रस्त जीवों का उद्धार हो सकता है।" जो कुछ उनके गुरुभाइयों ने किया था, उस पर दुख प्रकट करना व्यर्थ था, लेकिन उसे जानकर उस पर क्षोभ करने में भी, अभय को लगा कि जो कुछ हुआ, उसकी पीड़ा के होते हुए भी आगे के लिए आशा की किरण दिखाई देती थी।

अभय ने इस कविता और 'वृन्दावन-भजन' को केशव महाराज के पास भेज दिया और उन्होंने उन्हें *गौड़ीय पत्रिका* में प्रकाशित किया।

• • •

एक रात अभय ने एक चमत्कारपूर्ण स्वप्न देखा—ऐसा स्वप्न जो उन्होंने गृहस्थ-जीवन में कई बार पहले देखा था। उन्होंने देखा कि श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती उनके सामने प्रकट हुए है, ठीक उसी रूप में जिसमें अभय ने उनके जीवन-काल में उन्हें देखा था—लम्बे, विद्वत्तापूर्ण संन्यासी, आध्यात्मिक लोक से कृष्ण के निजी अनुचरों में से सीधे चले आ रहे थे। उन्होंने अभय को पुकारा और संकेत दिया कि वे उनका अनुगमन करें। उन्होंने बार-बार पुकारा और संकेत दिया। वे अभय से संन्यास लेने को कह रहे थे। उनका कहना था—आओ, संन्यासी बनो।

आश्चर्य से अभिभूत होकर अभय जागे। उन्हें यह आदेश उस मूल आदेश का एक अन्य संस्करण लगा, जो श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ने कलकत्ता की पहली भेंट के समय उन्हें दिया था—वही आदेश जो उनके आध्यात्मिक गुरु ने अपने बाद के पत्र में जोरदार

शब्दों में दुहराया था कि प्रचारक बनो और अँग्रेजी के माध्यम से कृष्णभावनामृत का प्रसार सारे पाश्चात्य जगत में करो। संन्यास का यही उद्देश्य था, नहीं तो उनके आध्यात्मिक गुरु उन्हें इसे स्वीकार करने को क्यों कहते? अभय ने तर्क दिया कि उनके आध्यात्मिक गुरु कह रहे हैं कि, "अब संन्यास ले लो और तुम यह मिशन पूरा करने में वास्तव में सफल हो जाओगे। इसके पहले समय अनुकूल नहीं था।"

अभय ने सावधानीपूर्वक विचार किया। संन्यास लेकर वैष्णव अपने को मनसा, वाचा, कर्मणा परम भगवान् की सेवा के प्रति पूर्णतः समर्पित कर देता है और अन्य सारे धंधे छोड़ देता है। अभय तो ऐसा पहले ही कर रहे थे। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ने अपने सभी अग्रणी शिष्यों को संन्यास दिया था, जिससे वे उनके मिशन को आगे बढ़ाते रहें, लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया। पाश्चात्य जगत में प्रचार का कार्य गौड़ीय मठ के जाने-माने संन्यासियों के लिए भी कठिन सिद्ध हुआ था। तो अभय, जो मात्र एक गृहस्थ थे, कैसे मान लेते कि वे वहाँ सफल होंगे, जहाँ औरों को विफलता मिली थी। उनके मन में हिचक थी। जो बेबसी, जो असमर्थता उन्होंने अपनी 'विरह-अष्टक' कविता में प्रकट की थी, वही उनके मन में छाई थी। लेकिन अब उनके आध्यात्मिक गुरु उन्हें इशारे से बुला रहे थे कि ऐसे सारे विचारों को, यहाँ तक कि अपनी स्वाभाविक विनम्रता भी छोड़ दो। यद्यपि अब वे वृद्ध हो गये थे और अकेले थे, लेकिन अपने आध्यात्मिक गुरु की भाँति प्रचार करने की इच्छा उनके मन में बनी थी, ऐसा जिसे वे शान्त ढंग से प्रकट करते थे।

वैदिक मान्यता और पूर्व आचार्यों द्वारा स्थापित दृष्टान्त यह था कि यदि कोई प्रचार आन्दोलन का संचालन करना चाहता है, तो उसके लिए संन्यास जरूरी है। श्रील भक्तिसिद्धान्त ने अपने मिशनरी कार्य की सुविधा के लिए संन्यास ग्रहण किया था। भगवान् चैतन्य ने संकीर्तन आन्दोलन को आगे बढ़ाने के उद्देश्य से संन्यास लिया था। निस्सन्देह, महाप्रभु चैतन्य परम भगवान् थे, लेकिन जब उनके युवा शिष्यों ने उनको सामान्य पुरुष मानकर उनके प्रति असम्मान दिखाया, तो उन्होंने संन्यास ले लिया था। चूँकि किसी संन्यासी का लोग स्वतः सम्मान करते हैं, इसलिए भगवान् चैतन्य द्वारा संन्यास-धारण करना जानबूझकर अपनायी गयी एक तरकीब थी। संन्यासी का वेश धारण कर ज्योंही वे देश-भर में घूमने लगे, उनके संकीर्तन आन्दोलन की ओर हजारों लोग आकृष्ट हो गये।

यह जानते हुए कि बहुत से प्रवंचक गेरुआ वस्त्र धारण करके संन्यासियों को मिलने वाले सम्मान का दुरुपयोग करेंगे, भगवान् चैतन्य ने कलियुग में संन्यास-ग्रहण की मनाही की थी। वे जानते थे कि प्रवंचक, साधुओं का वेश बनाकर अनैतिक आचरण करेंगे, धन-संग्रह करके भोग-विलास में लगेंगे और केवल अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए अनुयायी बनाएँगे और अपने आपको स्वामी कहकर जनता को धोखा देंगे। चूँकि कलियुग में लोग

संन्यास के विधि-विधानों का पालन नहीं कर सकते, इसलिए भगवान् चैतन्य की संस्तुति थी कि सब लोग केवल हरे कृष्ण का जप करें। किन्तु यदि कोई वास्तव में नियमों का पालन कर सके और विशेषकर यदि उसे संकीर्तन आन्दोलन फैलाना हो, तो उसके लिए संन्यास आवश्यक होगा।

अभय को अनुमति के लिए पहले अपने एक गुरुभाई के पास जाना था। उन्होंने कलकत्ता में चैतन्य गौड़ीय मठ के प्रमुख भक्तिविलास तीर्थ महाराज (पूर्व नाम कुंजबिहारी) के पास जाने का निश्चय किया। अभय अब भी चैतन्य मठ को अपने आध्यात्मिक गुरु के मिशन का मुख्यालय मानते थे। उग्र कानूनी लड़ाइयों में चैतन्य मठ सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सम्पत्ति थी और १९४८ ई. से वह भक्तिविलास तीर्थ महाराज के वैध अधिकार में था। यद्यपि अब हर संन्यासी का अपना स्थान या अपने स्थान थे, लेकिन गौड़ीय मठ की सत्ता का प्रतिनिधित्व केवल चैतन्य मठ और भक्तिविलास तीर्थ महाराज करते थे। अभय को लगा कि यदि उन्हें संन्यास लेना है और अमेरिका में प्रचार के लिए जाना है, तो अपने कार्य में सहायता के लिए उन्हें पहला अवसर चैतन्य मठ को देना चाहिए। अप्रैल १९५९ ई. में अभय ने भक्तिविलास तीर्थ महाराज को लिखा और उनसे संन्यास के विषय में और चैतन्य मठ द्वारा अपनी कुछ पाण्डुलिपियों को छापने के बारे में पूछा। और चूँकि कोई विदेश नहीं जा रहा था, इसलिए उन्होंने चैतन्य मठ की ओर से स्वयं अपने जाने की तत्परता प्रकट की।

भक्तिविलास तीर्थ महाराज ने उत्तर दिया कि उन्हें पहले चैतन्य मठ में सम्मिलित हो जाना चाहिए। जो झगड़ा अब भी चल रहा था, उसके विषय में उन्होंने उल्लेख किया कि "जो चैतन्य मठ के विरुद्ध कार्य कर रहे हैं, वे अपने व्यक्तिगत स्वार्थों से प्रेरित हैं।" उन्होंने कहा कि जो कोई भी चैतन्य मठ के विरुद्ध कार्य कर रहा है, उसका व्यवहार तर्कहीन और भक्तिसिद्धान्त सरस्वती के आदेशों के विपरीत है। इसलिए तीर्थ महाराज के अनुसार अभय के लिए जो करणीय था और जिसकी वे इतने वर्षों से अवहेलना करते आये थे, वह यह था कि वे चैतन्य मठ में सम्मिलित हो जाँय और उनके निर्देशन में कार्य करें। तीर्थ महाराज ने चैतन्य मठ के ऐसे कई सदस्यों का उल्लेख किया, जिन्होंने हाल में संन्यास लिया था और उन्होंने कहा कि अभय को भी, समय रहते, संन्यास ले लेना चाहिए। उन्होंने अभय को आने और चैतन्य मठ में रहने के लिए आमंत्रित किया : "जो मकान हमारे पास हैं, उनके कमरे खुली हवा और प्रकाश वाले हैं। हम आपको विशेष सुविधाएँ प्रदान करेंगे। कोई कठिनाई नहीं होगी। हम ख्यास रखेंगे कि आपको कोई असुविधा न हो।" लेकिन जहाँ तक किताबें छापने का प्रश्न था :

> हम भक्ति पर आधारित सत्सन्दर्भ और वेदान्त जैसी तथा गोस्वामियों द्वारा रचित अन्य बहुत-सी दुर्लभ पुस्तकों को छापने की उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे हैं; उन्हें हम पहले छापेंगे। आप द्वारा लिखित पुस्तकें सम्पादकीय विभाग द्वारा जाँची जायँगी और यदि धन प्राप्त किया जा सका, तो प्राथमिकता के अनुसार उनका मुद्रण हो सकता है। पुस्तकें तभी मुद्रित होंगी, यदि वे चैतन्य मठ की सेवा के लिए उपयोगी होंगी। इसलिए यदि धन संग्रह हो सका, तो विदेश जाने की भी योजना है।

अभय उत्साहित नहीं हुए। उन्हें लगा कि मुख्य कठिनाई यह थी कि चैतन्य मठ के पास धनाभाव था।

श्रील प्रभुपाद : *मैं अपने टूटे टाइपराइटर से काम ले रहा था। मैं तीर्थ महाराज के पास गया और बोला, "आप मुझे एक कमरा दे दीजिए और मेरी पुस्तकें छाप दीजिए। मुझे कुछ पैसे दीजिए। मैं आपके साथ आ जाऊँगा।" मैंने सोचा कि, "यह गुरु महाराज की संस्था है।" उन्होंने न नहीं कहा, लेकिन पुस्तकें छापना उनके लिए कठिन कार्य था। उनके पास धन नहीं था। मुश्किल से वे निर्वाह-भर के लिए इकठ्ठा कर पा रहे थे। पुस्तकें छापना बड़ा भारी धंधा है और उनकी बिक्री की कोई गारंटी नहीं है।*

बिना पुस्तकों की छपाई और पश्चिम की यात्रा के संन्यास का अभय के लिए कोई अर्थ नहीं था। और कौन जानता था कि तीर्थ महाराज उन्हें संन्यास लेने की अनुमति कब देंगे। कलकत्ता जाकर केवल खुली हवा और प्रकाश वाले कमरे में रहने का कोई मतलब नहीं था; यह तो उनके पास वृन्दावन में भी थे। अभय ने तीर्थ महाराज को उत्तर दिया और उसमें अंग्रेजी-भाषी जनता में जाकर प्रचार करने के लिए श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती के सीधे आदेश का उल्लेख किया। वे पश्चिम के देशों को तुरन्त जाना चाहते थे और उन्होंने सोचा था कि चैतन्य मठ उनके इस प्रस्ताव का स्वागत करेगा। अभय और तीर्थ महाराज दोनों की जिम्मेदारियां थीं, लेकिन मिलकर कार्य करने से शायद वे अपने आध्यात्मिक गुरु की इच्छाओं को पूरा कर सकें। अभय ने तीर्थ महाराज को पुनः विचार करने को कहा। ७ मई, १९५९ ई. को भक्तिविलास तीर्थ महाराज ने जवाब दिया :

> मेरा सुझाव यह है कि शीघ्रता में कोई निर्णय न लें। अभी आप हमारे साथ रहें और अपने को संस्था की सेवा में लगाएँ और तब त्रिदण्ड (संन्यास) लें। त्रिदंड धारण करने का उद्देश्य संस्था की सेवा करना है।
>
> यदि आपकी यही इच्छा है, तो श्री चैतन्य मठ आपके अमेरिका जाकर प्रचार

करने के बारे में तय करेगा और उसके लिए सारी व्यवस्था करेगा। संस्था का यह सिद्धान्त कभी नहीं हो सकता कि हर व्यक्ति को उसकी इच्छा या प्रयास के अनुसार कार्य करने दिया जाये। प्रमुखों के परामर्श से संस्था तय करेगी कि किसे क्या करना है। मैं केवल यही कहना चाहता हूँ। सबसे पहले व्यक्ति को संस्था के साथ अपना तादात्म्य स्थापित करना आवश्यक है।

अमेरिका या बाहर के अन्य देशों में प्रचार करने के लिए यह आवश्यक है कि पृष्ठभूमि में एक गौरवशाली संगठन हो और दूसरे, यह भी जरूरी है कि विदेशों में प्रचार के लिए जाने से पहले व्यक्ति भारत में ख्याति अर्जित कर ले।

पश्चिम में पहले की तरह अब सभाएं या बैठकें नहीं होतीं। संचार दूरदर्शन के माध्यम से होता है।

अभय चैतन्य मठ की आवश्यकताएँ और प्राथमिकताएँ समझ गये थे, लेकिन वे इसके लिए तैयार नहीं थे कि भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ने पश्चिम में जाकर प्रचार करने का जो सर्वोच्च आदेश दिया था, उसका उल्लंघन हो। अभय ने चैतन्य मठ के नेताओं को अपनी सेवाएँ यह सोचकर अर्पित की थीं कि वे लोग भी उन्हीं जैसा सोचते होंगे। उनका विचार था कि कृष्णभावनामृत के लिए तड़पते हुए संसार की तात्कालिक जरूरत देखकर मठ के नेता समझ जायेंगे कि अभय बाबू में उत्साह है और आत्मविश्वास है और वे जो कुछ भी माँगते हैं, उसकी व्यवस्था करके उन्हें तुरन्त पश्चिम भेज देना चाहिए। लेकिन उनकी प्राथमिकताएं और ही थीं।

अभय अब मथुरा के केशव महाराज की ओर उन्मुख हुए और केशव महाराज ने उन्हें तुरन्त संन्यास लेने को कहा। तीर्थ महाराज से पत्र-व्यवहार के बाद संन्यास लेने के विषय में वे कुछ अनिश्चितता अनुभव करने लगे थे और अब, क्योंकि उन्हें साग्रह प्रोत्साहित किया जा रहा था, अत: वे विरोध कर रहे थे। लेकिन केशव महाराज का आग्रह बना रहा।

श्रील प्रभुपाद : *कुछ लिखता हुआ मैं वृन्दावन में अकेला बैठा था। मेरे गुरुभाई ने आग्रहपूर्वक कहा, "भक्तिवेदान्त प्रभु, आपको यह जरूर कर लेना चाहिए। संन्यास लिए बिना कोई प्रचारक नहीं बन सकता।" इस तरह वे आग्रह करते रहे। आग्रह वे नहीं कर रहे थे; सचमुच मेरे आध्यात्मिक गुरु आग्रह कर रहे थे। वे चाहते थे कि मैं प्रचारक बनूँ, इसलिए वे मेरे इस गुरुभाई के माध्यम से आग्रह कर रहे थे कि मैं संन्यास ले लूँ। अस्तु, अनिच्छापूर्वक मैंने संन्यास ग्रहण किया।*

• • •

केशवजी गौड़ीय मठ मथुरा नगर के एक बाजार के मध्य स्थित था। इसका मुख्य रास्ता, मेहराबदार फाटक से होकर आँगन में जाता था। आँगन ऊपर से किसी धातु की जाली से ढँका था। मठ का स्थापत्य वंशीगोपालजी मन्दिर जैसा था। वातावरण मठ जैसा शान्त और एकान्त था। वहाँ के लिए अभय सुपरिचित और समादृत व्यक्ति थे। वे वहाँ रहे थे और वहाँ के पुस्तकालय में बैठकर उन्होंने अध्ययन और लेखन-कार्य किया था तथा *गौड़ीय पत्रिका* का सम्पादन किया था। मठ को उन्होंने भगवान् चैतन्य के श्रीविग्रह का दान किया था जो राधा और कृष्ण (श्री श्री राधा-विनोदविहारीजी) के विग्रहों के बगल में आसन पर विराजमान थे। किन्तु सितम्बर १९५९ ई. की मथुरा की यह यात्रा कोई एक सामान्य यात्रा नहीं थी। वे मठ में श्वेत वस्त्र धारण करके अभय बाबू के रूप में प्रविष्ट हुए किन्तु शीघ्र ही गेरुए वस्त्र में एक स्वामी के रूप में उन्हें बाहर निकलना था।

पिछले नौ वर्ष से अभय एक विरक्त की भाँति रह रहे थे; उन्हें किसी समारोह का आयोजन करके या गेरुआ वस्त्र धारण करके अपने को साधु घोषित करने की जरूरत नहीं थी। लेकिन यह परम्परा का विधान था कि जीवन के अन्त में मनुष्य को त्रिदंडी संन्यास लेना चाहिए। वे धोखेबाज संन्यासियों के बारे में जानते थे; वृन्दावन में भी उन्होंने ऐसे तथाकथित साधु देखे थे, जो प्रचार नहीं करते थे, वरन् चपातियों की खोज में अपना समय बिताते थे। वृन्दावन के कुछ स्वामी तो अवैध स्त्री-संभोग जैसे कर्मों में भी लिप्त थे, जिनका परित्याग करने के लिए ही उनका यहाँ आगमन माना जाता था। ऐसे लोग संन्यास को उपहास का पात्र बना रहे थे। और जाति-गोस्वामी भी थे जो साधारण गृहस्थों की तरह रहते थे और अपने परिवारों के पालन के लिए धंधे के रूप में मन्दिरों का संचालन करते थे। वे अपने जन्म के झूठे आधार पर जनता से सम्मान और अनुदान प्राप्त करते थे। अभय को संन्यास के इन दुरुपयोगों का पता था, लेकिन वे संन्यास के वास्तविक उद्देश्य से भी अवगत थे। संन्यास प्रचार के लिए था।

१७ सितम्बर १९५९ ई. को सवेरे केशवजी मठ की दूसरी मंजिल पर पचास फुट लम्बे और पच्चीस फुट चौड़े कमरे में राधा-कृष्ण और भगवान् चैतन्य के विग्रहों के सामने भक्तों का एक दल बैठा था। श्रीविग्रहों को रंगबिरंगी राजकीय वेश-भूषा में और चाँदी के मुकुटों से सजाया गया था। राधारानी की दाहिनी हथेली आराधकों के लिए वरदान की मुद्रा में आगे की ओर उठी थी, बाएं हाथ में कृष्ण के लिए वे एक पुष्प लिए थीं। कृष्ण एक नर्तक की मुद्रा में खड़े थे। उनका दाहिना पैर बाएं से आगे बढ़ा हुआ अंगूठे के बल स्थित था; लम्बी रूपहली बाँसुरी रक्तिम अधरों पर लावण्यमय ढंग से रखे हुए वे वादन कर रहे थे। सिर के लम्बे काले बाल उनके कंधों के नीचे तक लटक रहे थे और गले में पड़ी गेंदे के फूलों की माला उनके घुटनों तक पहुँच रही थी। उनकी दाहिनी ओर भगवान्

चैतन्य की प्रतिमा थी। उनकी दाहिनी बाँह उठी थी, बांयी बाँह बगल में थी, शरीर सीधा-तना था और पैर जुड़े थे। उनका रंग हल्का सुनहरा था, आँखे बड़ी थीं, रक्ताभ मुखाकृति सुन्दर थी, सीधे काले बाल कंधो तक लटक रहे थे। श्रीविग्रहों के कुछ नीचे के आसन पर आध्यात्मिक गुरुओं के चित्र गुरु-परम्परा के क्रम से स्थित थे : जगन्नाथ दास बाबाजी, भक्तिविनोद ठाकुर, गौरकिशोरदास बाबाजी, भक्तिसिद्धान्त सरस्वती, भक्तिप्रज्ञान केशव महाराज।

अभय नब्बे वर्षीय सनातन के पास जिन्हें उसी दिन संन्यास लेना था, कुश के आसन पर बैठे। इन दोनों अभ्यर्थियों के सामने बैठे केशव महाराज के शिष्य, नारायण महाराज मंत्रों के पाठ और यज्ञ के अनुष्ठान के लिए अग्नि में धान्य और घी की आहुतियाँ डालने की तैयारी करने लगे। अभय के गुरुभाई अकिंचन कृष्णदास बाबाजी, जो अपने मधुर संगीत के लिए प्रसिद्ध थे, मृदंग बजा रहे थे और वैष्णव भजन गा रहे थे। ऊँचे आसन पर बैठे अनुग्रहमूर्ति केशव महाराज अध्यक्षता कर रहे थे। चूँकि न तो कोई नोटिस जारी किया गया था और न किसी को निमंत्रण भेजा गया था, इसलिए मठ के कुछ अधिवासी ही उपस्थित थे।

नारायण महाराज ने कुछ अपेक्षित मंत्र पढ़े और तब वे शान्त होकर बैठ गये और केशव महाराज व्याख्यान देने लगे। तब, सबको आश्चर्य में डालते हुए, उन्होंने अभय से बोलने को कहा। अभय को इसकी आशा न थी। अपने चारों ओर बैठे भक्तों के समुदाय पर उन्होंने दृष्टि डाली तो वे समझ गये कि सबकी सामान्य भाषा हिन्दी थी; केवल केशव महाराज और कुछ अन्य अँग्रेजी बोलने वाले थे। लेकिन उन्हें मालूम था कि उनको अँग्रेजी में ही बोलना है।

अभय के भाषण के बाद, प्रत्येक नव-दीक्षित को उसका संन्यास-दण्ड प्राप्त हुआ, जो सिर जितना ऊँचा था, और चार बेतों को एक में बाँध करके बनाया गया था और गेरुए वस्त्र से पूर्णतः आच्छादित था। हर संन्यासी को संन्यासी के वस्त्र दिए गये : एक गेरुआ टुकड़ा धोती के लिए, एक टुकड़ा ऊपर पहनने के लिए और दो टुकड़े कोपीन के लिए। गले में पहनने के लिए उन्हें तुलसी की माला भी मिली और मिला संन्यास-मंत्र। केशव महाराज ने कहा कि आज से अभय का नाम भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज होगा और सनातन का मुनि महाराज। समारोह के पश्चात् दोनों नये संन्यासियों का फोटो खींचा गया, वे अपने संन्यास-गुरु के अगल-बगल खड़े थे, जबकि गुरु महाराज कुर्सी पर बैठे थे।

केशव महाराज ने अभय पर कोई बन्धन नहीं लगाया; उन्होंने उनको केवल प्रोत्साहित किया कि वे प्रचार में लगे रहें। तब भी अभय को मालूम था कि ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी बनने का मतलब केवल यह नहीं था कि वे परिवार, घर, उसकी सुख-

सुविधा और अपना धंधा छोड़ रहे हैं। यह तो वे पाँच वर्ष पूर्व कर चुके थे। श्वेत वस्त्र छोड़कर गेरुए वस्त्र पहनने का और अभय बाबू की जगह भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज कहलाने का विशेष महत्त्व उस आदेश में निहित था, जो उन्होंने प्राप्त किया था—उस प्रतिबद्धता में जो अटल थी। अब तो वह समय आने ही वाला था, जब भक्तिवेदान्त स्वामी पश्चिम की यात्रा पर जायँगे, जैसाकि भक्तिसिद्धान्त सरस्वती का आदेश था। यह उनके संन्यास के नये पद की उनकी यह उपलब्धि होगी।

गौड़ीय पत्रिका में संन्यास संस्कार का विवरण छपा, जिसमें श्री श्रीमद् भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज के जीवन चरित और उनके जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं का समावेश था। विवरण का अन्तिम अंश इस प्रकार था :

> हिन्दी, अंग्रेजी और बँगाली में लेख लिखने के उनके उत्साह और योग्यता को देखकर भक्तिसिद्धान्त सरस्वती महाराज ने उनसे त्रिदण्डी-संन्यास लेने को कहा। पिछले एक साल से वे संन्यास लेने के लिए तैयार थे। भाद्र मास में, जिस दिन विश्वरुप ने संन्यास ग्रहण किया, उसी दिन भक्तिवेदान्त स्वामी ने श्री केशवजी गौड़ीय मठ में वेदान्त समिति के संस्थापक भक्तिप्रज्ञान केशव महाराज से संन्यास धारण किया। उनको संन्यास आश्रम स्वीकार करते और विरक्त जीवन की लीला भूमि में प्रवेश करते देखकर उनके प्रति हमारे हृदय में प्रेम और उत्साह उमड़ा है। ●